
Registration No. V-36244/2008-09

ISSN :- 2350-0611

The journal has been listed in 'UGC Approved List of Journals' with Journal No. – 48441 in previous list of UGC

JIFE Impact Factor – 5.23

Research Highlights

A Multidisciplinary Quarterly International Peer Reviewed Referred Research Journal

Editor

Dr. Kamlesh Kumar Singh

Assistant Professor

Department of Sociology

Pt. D.D.U. Govt. Girls P.G. College

Sevapuri, Varanasi

Volume - XII

No. - 3

(July – Sept. 2025)

(Part – V)

Published by
Future Fact Society
Varanasi (U.P.) India

Research Highlights - A Referred Journal, Published by : Quarterly

Correspondence Address :

C 4/270, Chetganj

Varanasi, (U.P.)

Pin. - 221 010

Mobile No. :- 09336924396

Email- researchhighlights1@gmail.com

Note :-

The views expressed in the journal "Research Highlights" are not necessarily the views of editorial board or publisher. Neither any member of the editorial board nor publisher can in anyway be held responsible for the views and authenticity of the articles, reports or research findings. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Managing Editor
Avinash Kumar Gupta

©Publisher

ISSN : 2350-0611

Printed by

Interface Computer, B 31/13-6, Malviya Kunj, Lanka, Varanasi-221005 (U.P.)

ADVISORY BOARD

- **Prof. T. N. Singh**, United Nations Professor of Plant Physiology, Department of Plant Sciences, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Prof. S.K. Bhatnagar**, School for Legal Studies, BBAU, Lucknow
- **Prof. (Dr.) Munna Singh**, Head of Department, Physical Education and Sports Sciences Department, Handia P.G. College, Handia, Prayagraj, U.P.
- **Dr Achchhe Lal Yadav**, Assistant Professor, Physical Education, Pt. D. D. U. Government Degree College, Saidpur, Ghazipur
- **Dr. Pramod Rao**, Assistant Professor, Department of Hindi, VBS Purvanchal University, Jaunpur
- **Dr. Anil Pratap Giri**, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Pondicherry Central University, Pondicherry.

EDITORIAL BOARD

- **Dr. Sanjay Singh**, Department of Plant Science, University of Gondar, Ethiopia (Africa)
- **Dr. Diwakar Pradhan**, Professor in Nepali, Head, Deptt. of Indian Languages Faculty of Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Shailendra Singh**, Professor and Head, Department of Sociology, J.S. University, Sikohabad, U.P.
- **Dr. Manish Arora**, Associate Professor, Faculty of Visual Arts, Banaras Hindu University, Varanasi
- **Dr. Surjoday Bhattacharya**, Assistant Professor, Government Degree College, Pratapgarh U P
- **Dr. Upasana Ray**, Associate Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Krishna Kant Tripathi**, Assistant Professor, Deptt. of Education, Central University of Mijoram, Mijoram
- **Dr. Urjaswita Singh**, Assistant Professor, Department of Economics, M.G. Kashi Vidyapith, Varanasi.
- **Dr. Satyapal Yadav**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Brajesh Kumar Prasad**, Assistant Professor, Department of History, Banaras Hindu University, Varanasi.
- **Dr. Dewendra Pratap Tiwari**, Assistant Professor, Department of Political Science, Shree Lakshmi Kishori Mahavidyalaya (A Constituent Unit of BRA Bihar University, Muzaffarpur), Bihar

- **Dr. Hena Hussain**, Assistant Professor, Department of Psychology, Oriental College, Patna City (A Constituent Unit of Patliputra University, Patna), Bihar
- **Dr. Santosh Kumar Singh**, Assistant Professor, P.G. Department of Psychology, J.P. University. Chapra
- **Dr. Ramkirti Singh**, Assistant Professor, Department of Psychology, Gorakhpur University, Gorakhpur
- **Dr. Girish Kumar Tiwari**, Assistant Professor, National Council of Educational Research and Training, New Delhi
- **Dr. Vaibhav Kaithvas**, Assistant Professor, Department of Performing Art, Eklavya University, Sagar Road, Damoh, MP
- **Dr. Ranjeet Kumar Ranjan**, Assistant Professor, Department of Psychology, J.P. College, Narayanpur, Bihar
- **Dr. Paromita Chaubey**, Faculty of Education, Banaras Hindu University, Varanasi



EDITOR'S NOTE

It is a great honour to me to extend my warm greetings and welcome you all to the journal, **Research Highlights**, a refereed journal of multi disciplinary research. The journal, which is a peer-reviewed, will devote to the promotion of multi-disciplinary research and explorations to the South Asian and global community. It is our objective to provide a platform for the publication of new scholarly articles in the rapidly growing field of various disciplines. We are trying to encourage new research scholars and post graduate students by publishing their papers so that they may learn and participate in literary publishing through a professional internship. Scholarly and unpublished research articles, essays and interviews are invited from scholars, faculty researchers, writers, professors from all over the world.

Note: All outlook and perspectives articulated and revealed in our peer refereed journal are individual responsibility of the author concerned. Neither the editors nor publisher can be held responsible for them anyhow. Plagiarism will not be allowed at any level. All disputes are subject to Varanasi (Uttar Pradesh) Jurisdiction only.

Hoping all of you shall enjoy our endeavors and those of our contributors.

Editor



CONTENTS

"Research Highlights"

➤	भारत नेपाल तराई क्षेत्र (उ०प्र०) में साक्षरता वितरण प्रतिरूप <i>रंजना सिंह</i>	01-04
➤	पर्यावरण एवं संस्कृति के पोषक मौर्य सम्राट अशोक का विश्लेषण : अभिलेखीय आधार पर <i>अंकेश कुमार वर्मा</i>	05-07
➤	माध्यमिक स्तर पर राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षणरत् पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन <i>डॉ. एस. पी. सिंह वत्स</i> <i>अनूप कुमार यादव</i>	08-13
➤	दिव्यांगता कल्याण नीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन <i>शिवांगी यादव</i> <i>डॉ. सन्तोष कुमार सिंह</i>	14-17
➤	चेतना और शिक्षा के संदर्भ में स्त्री <i>हेमलता</i> <i>डॉ. राजीव कुमार झा</i>	18-22
➤	भारत में दलित साहित्य और दलित आन्दोलन <i>अजय कुमार</i> <i>संजय श्रीवास्तव</i>	23-24
➤	उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर पर प्रभाव <i>अज़ीमा खुशनूदी</i>	25-29
➤	देवरिया जनपद में साक्षरता का क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप <i>सुजाता मल्ल</i>	30-33
➤	जनपद बाराबंकी का भूमि उपयोग प्रतिरूप : एक भौगोलिक अध्ययन <i>डॉ. श्री प्रकाश सिंह</i> <i>दिनेश सिंह</i>	34-42
➤	उ०प्र० पंचायती राज व्यवस्था में महिला सहभागिता और शासन की प्रभावशीलता (महाराजगंज जनपद के विकास खण्डों के संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन) <i>विजय शंकर सिंह</i> <i>प्रो. धर्मेन्द्र कुमार सोनकर</i>	43-46

➤	आयुष्मान भारत योजना का गरीबों पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन <i>अवधेश</i> <i>प्रो. ध्रुवभूषण सिंह</i>	47-51
➤	लघु पत्रिकाओं के अस्तित्व का प्रश्न और सुरेंद्र स्निग्ध की संपादन दृष्टि तथा संस्कृति बोध <i>पंकज कुमार चौधरी</i> <i>डॉ. रमेश प्रसाद गुप्ता</i>	52-58
➤	भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञानरश्मि का अतुलनीय योगदान : एक अध्ययन <i>विश्वजीत</i>	59-62
➤	सेवा एवं त्याग के प्रतिमूर्ति – श्री जगलाल चौधरी <i>संतोष कुमार</i>	63-66
➤	भारत में दृष्टिहीनता और उसके कारणों का एक शैक्षिक अध्ययन <i>विवेक सिंह</i>	67-71
➤	भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का अवदान <i>पंकज चन्द्र गोस्वामी</i>	72-75

भारत नेपाल तराई क्षेत्र (उ०प्र०) में साक्षरता वितरण प्रतिरूप

रंजना सिंह*

Abstract

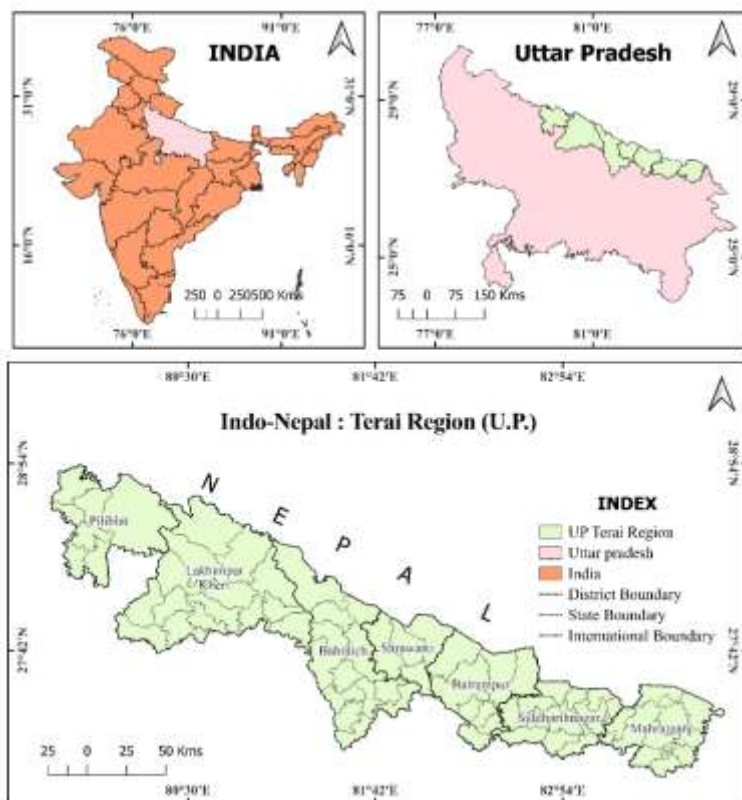
The Paper in hand Intends to analyze the satial pattern of literacy in backward economy with viewpoint of enhancements of quality of life. The study is based on secondary data collected from different government sources. The study suggest that there is need to diversity in economic activities for enhancement of literacy.

किसी भी क्षेत्र की भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं उस क्षेत्र के स्थानीय संगठन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र का अपना एक अलग अस्तित्व होता है। प्राचीन काल से ही भारत-नेपाल सीमा तराई क्षेत्र का अपना एक अलग महत्व रहा है। किसी भी क्षेत्र के विभिन्न भौगोलिक तत्वों का आपसी अन्तर्सम्बन्ध उस क्षेत्र के स्थानिक संगठन को वास्तविक आकार प्रदान करता है। भौगोलिक विशेषताओं के साथ-साथ किसी भी क्षेत्र की विकास प्रक्रिया से क्षेत्र में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को दर्शाती है। किसी क्षेत्र के विकास एवं असंतुलन दोनों का प्रमुख कारण क्षेत्र की भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं में विविधता का होना है। किसी भी क्षेत्र के विकास के विभिन्न स्तरों एवं आयामों का अध्ययन करने से पहले उस क्षेत्र के भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक होता है।

अध्ययन क्षेत्र की भौतिक विशेषताएं—

अध्ययन क्षेत्र भारत के प्रमुख राज्य उत्तर प्रदेश में स्थित है। यह क्षेत्र हिमालय पर्वत के दक्षिण में उसके पर्वत पदीय क्षेत्र के रूप में स्थित है। इसका विस्तार नेपाल देश के दक्षिणी सीमा के सहारे-सहारे एक संकीर्ण पेटी या मेखला के रूप में है। भौगोलिक रूप से यह क्षेत्र दो बड़े भौगोलिक स्थलाकृतिक व प्राकृतिक प्रदेशों— 1 हिमालय पर्वतीय प्रदेश 2. गंगाके बृहद मैदानी प्रदेश के मध्य संक्रमण पेटी या क्षेत्र के रूप में अवस्थित है। इसका विस्तार 26° 53' उत्तरी अक्षांश से 28°53' उत्तरी अक्षांश तथा 79°57' पूर्वी देशान्तर से 83°56' पूर्वी देशान्तर के मध्य है। अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक क्षेत्रफल 27439 वर्ग किमी० है। जिसमें पीलीभीत जनपद का 3686 वर्ग किमी० अर्थात् 13.43 प्रतिशत, लखीमपुर खीरीजनपद का 7680 वर्ग किमी० अर्थात् 27.98 प्रतिशत, बहराइच जनपद का 5237 वर्ग किमी० अर्थात् 19.8 प्रतिशत, बलरामपुर का 3349 वर्ग किमी० अर्थात् 12.20 प्रतिशत, श्रावस्ती का 1640 किमी अर्थात् 5.98 प्रतिशत, सिद्धार्थनगर का 2895 अर्थात् किमी० अर्थात् 10.55 प्रतिशत तथा महाराजगंज जनपद का 2952 वर्ग किमी० अर्थात् 10.76 प्रतिशत क्षेत्र सम्मिलित हैं। प्रशासनिक रूप अध्ययन क्षेत्र में कुल सात जनपदों के 76 विकासखण्डों में सम्मिलित है। पीलीभीत, लखीमपुर खीरी, बहराइच, बलरामपुर, श्रावस्ती, सिद्धार्थनगर तथा महाराजगंज सम्मिलित हैं।

* शोध छात्रा, बुद्ध स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कुशीनगर



चित्र संख्या-1

उद्देश्य- प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य अध्ययन क्षेत्र में विद्यमान भौतिक एवं मानवीय दशाओं का अध्ययन करते हुए साक्षरता का स्थानिक एवं कालिक विश्लेषण करना है। साथ ही क्षेत्र विशेष में साक्षरता के समान वितरण हेतु उपयुक्त नियोजन प्रस्तुत करके समवितरण को प्रोत्साहन देना है।

आँकड़ों का स्रोत एवं विधितंत्र-

प्रस्तुत शोध प्रपत्र में साक्षरता का स्थानिक विश्लेषण विकास खण्ड स्तर पर किया गया है, जिसमें द्वितीयक आंकड़ों सांख्यिकी पत्रिका विकास भवन कार्यालय से प्राप्त हुआ है। इन आंकड़ों को तालिका एवं श्रेणीकरण के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है। संयुक्त राष्ट्र जनसंख्या आयोग के अनुसार किसी भी भाषा में साधारण संदेश को समझने के साथ पढ़ने और लिखने की योग्यता को साक्षर माना गया है। भारतीय जनगणना वर्ष 2001 के अनुसार 7 वर्ष या उससे अधिक उम्र का कोई भी व्यक्ति को किसी भाषा में लिख पढ़ सकता है साक्षर माना जाता है लेकिन जो केवल पढ़ सकता है वह साक्षर नहीं है। यह तथ्य सर्वमान्य है कि मानव संसाधन सबसे बड़ा संसाधन है। मानव संसाधन की संसाधनता को मायने का मुख्य अवयव साक्षरता है। क्षेत्रीय विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा मनुष्य के जीवन का महत्वपूर्ण लक्ष्य होने के साथ-साथ जीवन के वांछित मूल्यों की प्राप्ति हेतु एक उपयोगी साधन के साथ सामाजिक विकास का महत्वपूर्ण सूचक भी है। जनसंख्या के विशेषताओं में साक्षरता का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी क्षेत्र के समुचित विकास के लिए अधिकतर लोगों की कम से कम उस स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य है। जिसमें वे लिखे हुए निर्देशों को समझकर स्वयं निर्णय ले सकें। साक्षरता जनसंख्या के प्रगतिशील परिवर्तन का सूचक है। शिक्षा के स्तर में मनुष्य के सामाजिक और आर्थिक स्तर प्रभावित होता है। साक्षरता ही यह कारक है जो समाज में गतिशीलता प्रदान करता है। अर्थात् शिक्षा के माध्यम से ही जीवन के विकास का क्रम व दिशा निर्धारित होती है।

साक्षरता:

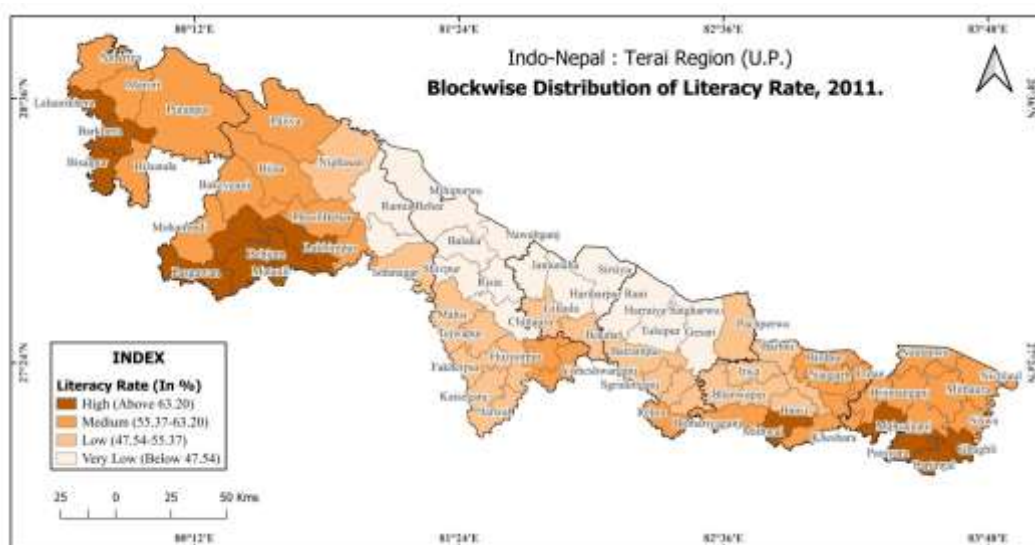
साक्षरता किसी क्षेत्र विशेष के आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनैतिक गतिशीलता का महत्वपूर्ण तत्व है। चतुर्दिक विकास में संरचनात्मक परिवर्तन में साक्षरता की अहम भूमिका होती है। भारत नेपाल तराई(उ०प्र०) क्षेत्र की साक्षरता 2011 की जनगणना के अनुसार 55.73 प्रतिशत जनसंख्या साक्षर थी, जो की देश की औसत साक्षरता 73 प्रतिशत से बहुत कम है।

अध्ययन क्षेत्र में साक्षरता को विकासखण्ड स्तर पर 4 वर्गों में विभक्त कर तालिका संख्या 1 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका संख्या –1**भारत-नेपाल तराई(उ०प्र०) में विकासखण्डवार: साक्षरता दर (2011)**

क्रम संख्या	वर्ग	मूल्य श्रेणी	विकासखण्डों का संख्या	विकासखण्डों का नाम
1	उच्च	63.2 >	13	लखीमपुर, कुम्भी गोला, बेहजम, मिठौली, परतावल,बरखेड़ा, ललौरी खेड़ा, घुघली, फरेन्दा, पसगवाँ, पनियरा,मिठवल, बिसलपुर
2	मध्यम	55.37-63.2	28	बिलसंडा, नौगढ़, मिठौरा, महाराजगंज, सिसवा, बर्डपुर, डुमरियागंज, ममौरी, मोहम्मदी, खेसरहा, धानी, बृजमनगंज, बाकेगंज, उस्का बाजार, लक्ष्मीपुर, शोहरतगढ़, नौतनवा, फूलबेहड़, लोटन, पयागपुर, पूरनपुर, निचलौल, पलिया, बिजुआ, अमरिया, रेहरा बाजार, नकहा, विशेश्वरगंज
3	निम्न	47.54-55.37	21	जोगिया, बांसी, भनवापुर, बढनी, इटवा, कैसरगंज, खुनियाव, गिलौला, उतरौला, ईसानगर, पचपेड़ा, इकौना, जरवल, श्रीदत्त गंज, गैसाड़ बुजुर्ग, निघासन, बलरामपुर, हुजूरपुर, तजवापुर, फखरपुर, महसी
4	अति निम्न	47.54<	14	चितौरा, मिहीपुरवा, रमिया बेहड़, नबाबगंज, गैसड़ी, धौरहरा, जमुनहा, सिरसिया, हरिहरपुर रानी, हरैया सतधर्वा, तुलसीपुर, रिसिया, शिवपुर, बलहा

स्रोत- शोधार्थी द्वारा परिगणीत।



चित्र संख्या-2

तालिका संख्या 1 एवं चित्र संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि **उच्च श्रेणी** की साक्षरता के अन्तर्गत 13 विकासखण्ड लखीमपुर, कुम्भीगोला, बेहजम, मितौली, परतावल, बरखेड़ा, ललौरी खेड़ा, घुघली, फरेन्दा, पसगावों, पनिरा, मिठवल एवं बिसलपुर विकासखण्ड सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में अति उच्च साक्षरता होने का मुख्य कारण शिक्षण संस्थानों का सर्वाधिक विकास एवं लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता अधिक है।

मध्यम श्रेणी के अन्तर्गत 28 विकासखण्ड सम्मिलित हैं जिनमें बिलसंडा, नौगढ़, मिठौरा, महाराजगंज, सिसवा, बर्डपुर, डुमरियागंज, मरौरी, मोहम्मदी, खेसरहा, धानी, बृजमनगंज, बाकेगंज, उस्का बाजार, लक्ष्मीपुर, शोहरतगढ़, नौतनवा, फूलबेहड़, लोटन, पयागपुर, पूरनपुर, निचलौल, पलिया, बिजुआ, अमरिया, रेहरा बाजार, नकहा, विशेश्वरगंज विकासखण्ड सम्मिलित हैं। इन क्षेत्रों में परिवहन के साधनों एवं शिक्षण संस्थानों के विकास होने से साक्षरता अधिक है।

निम्न श्रेणी के अन्तर्गत 21 विकासखण्ड सम्मिलित हैं जिनमें जोगिया, बांसी, भनवापुर, बड़नी, इटवा, कैसरगंज, खुनियाव, गिलौला, उत्तरौला, ईसानगर, पचपेड़ा, इकौना, जरवल, श्री दत्तगंज, गैसाड़ बुजुर्ग, निघासन, बलरामपुर, हुजूरपुर, तजवापुर, फखरपुर, एवं महसी विकासखण्ड सम्मिलित हैं।

अति निम्न श्रेणी के अन्तर्गत 14 विकासखण्ड सम्मिलित हैं जिनमें चितौरा, मिहीपुरवा, रामिया बेहड़, नबावगंज, गैसडी, धौरहरा, जमुनहा, सिरसिया, हरिहरपुर रानी, हरैया सतघर्वा, तुलसीपुर रिसिया, शिवपुर एवं बलहा विकासखण्ड सम्मिलित हैं इन विकासखण्डों साक्षरता का कम होने का मुख्य कारण शिक्षण संस्थानों का विकास कम होना एवं लोगों में शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव है।

निष्कर्ष—

भारत नेपाल तराई (उ०प्र०) क्षेत्र में साक्षरता का दर निरन्तर बढ़ रहा है, अध्ययन क्षेत्र के दक्षिणी पूर्वी विकासखण्डों में साक्षरता का दर निरन्तर बढ़ा है किन्तु उत्तरी-पश्चिमी भाग में साक्षरता का दर में बहुत कम वृद्धि हुआ है। साक्षरता दर में कमी होने का मुख्य कारण उत्तरी एवं पश्चिमी भागों में अवस्थापनात्मक तत्वों का अभाव एवं शिक्षा के प्रति लोगों में जागरूकता का अभाव है। साथ ही साथ निर्धनता के कारण छोटे उम्र में लोग बच्चों को रोजगार की तलाश में दूसरे क्षेत्रों में भेज देते हैं, जिससे साक्षरता वृद्धि की दर में कमी आयी है, क्षेत्र में साक्षरता वृद्धि को बढ़ाने के लिए सरकार को रोजगार परक शिक्षा के साथ-साथ शिक्षा की गुणवत्ता में भी सुधार की आवश्यकता है।

References:

- Chanddana, R.C. and Siddhu, M. S. (1980): Introduction to Population Geography, New Delhi, P.17.
 Clark, John,(1973): Population Geography : Pergamon Press, Oxford, Second Edition, P.14.
 Gosal, G.S.(1985): Literacy of India, An Interpretative Study, Rural Sociology, Vol.129.
 मौर्य, एस०डी० (2015): जनसंख्या भूगोल, शारदापुस्तकभवन, प्रयागराज, पृष्ठ सं० 96।
 जनपद सांख्यिकी पत्रिका (2011), पीलीभीत, लखीमपुर खीरी, बहराइच, श्रावस्ती, बलरामपुर, सिद्धार्थनगर एवं महाराजगंज।

पर्यावरण एवं संस्कृति के पोषक मौर्य सम्राट अशोक का विश्लेषण : अभिलेखीय आधार पर

अंकेश कुमार वर्मा*

सारांश

भारतीय इतिहास में सम्राट अशोक एक ऐसे शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं जिनका महत्व केवल उनके साम्राज्य विस्तार, राजनीतिक शक्ति या प्रशासनिक कौशल तक सीमित नहीं था, बल्कि वे मानवीय संवेदनाओं, धार्मिक सहिष्णुता और पर्यावरण-संवेदनशील दृष्टिकोण के अद्वितीय उदाहरण माने जाते हैं। कलिंग युद्ध के बाद उनके जीवन और शासन में जो आमूल परिवर्तन आया, उसने उन्हें इतिहास के पन्नों में एक विशेष स्थान प्रदान किया। अशोक ने करुणा और अहिंसा को केवल व्यक्तिगत आदर्श के रूप में नहीं अपनाया, बल्कि उसे शासन-व्यवस्था की आधारशिला बनाया।

उनके शिलालेखों और स्तंभलेखों में वृक्षारोपण, कुओं और विश्रामगृहों का निर्माण, पशुओं और पक्षियों की रक्षा, चिकित्सा सुविधाओं का विस्तार तथा सार्वजनिक कल्याण से संबंधित अनेक आदेश अंकित मिलते हैं। इन नीतियों से यह स्पष्ट होता है कि अशोक ने राज्य को केवल सत्ता-केंद्रित संस्था न मानकर उसे समाज और प्रकृति दोनों के संरक्षण का साधन बनाया। उनके प्रयासों से मौर्यकालीन समाज में पर्यावरण-संवेदनशीलता और मानवीय मूल्यों को मजबूती मिली।

आज जब पूरी दुनिया वनों की कटाई, जलवायु परिवर्तन, प्रदूषण और जैव-विविधता के संकट से जूझ रही है, तब अशोक की नीतियाँ और अधिक प्रासंगिक हो जाती हैं। उनके द्वारा प्रतिपादित वृक्षारोपण, जलस्रोतों का संरक्षण, पशु-संरक्षण तथा करुणा-आधारित शासन नीति वर्तमान समाज को यह संदेश देती है कि सतत विकास केवल तकनीकी साधनों से नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना और प्रकृति के साथ संतुलित संबंधों से ही संभव है। प्रस्तुत शोधपत्र में अशोक के अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर उनके पर्यावरण-संवेदनशील दृष्टिकोण का विश्लेषण किया गया है और यह प्रतिपादित किया गया है कि उनकी धारणाएँ मौर्यकाल में जितनी उपयोगी और प्रेरक थीं, आज के वैश्विक संदर्भ में भी उतनी ही मार्गदर्शक सिद्ध होती हैं।

मुख्य शब्द : सम्राट अशोक, धम्म-नीति, शिलालेख, पर्यावरण-संरक्षण, वृक्षारोपण, सामाजिक उत्तरदायित्व, सतत विकास

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति और परंपरा में प्रकृति और संस्कृति का गहरा संबंध रहा है। वैदिक साहित्य में पंचमहाभूतों को देवस्वरूप मानकर उनकी रक्षा का आह्वान किया गया है। इसी परंपरा का मूर्त रूप मौर्य सम्राट अशोक की नीतियों में दिखाई देता है।

कलिंग युद्ध (261 ई.पू.) के पश्चात अशोक का जीवन आमूल परिवर्तन से गुज़रा। उन्होंने हिंसा त्यागकर करुणा, अहिंसा और धर्मनीति को राज्य का आधार बनाया। अशोक के शिलालेख और स्तंभलेख दर्शाते हैं कि उन्होंने जीव-जंतुओं की सुरक्षा, वृक्षारोपण, चिकित्सा व्यवस्था और जलस्रोत संरक्षण जैसी योजनाओं को सामाजिक उत्तरदायित्व का अंग बनाया। इस प्रकार वे भारतीय इतिहास में पर्यावरण-संवेदनशील शासन के प्रवर्तक के रूप में उभरते हैं। इतिहासकारों के मतानुसार अशोक का दृष्टिकोण केवल तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों की प्रतिक्रिया नहीं था, बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक विरासत और बौद्ध दर्शन की करुणा-प्रधान परंपरा का स्वाभाविक परिणाम था। उनकी नीतियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि शासन केवल सत्ता-प्रबंधन तक सीमित नहीं होना चाहिए, बल्कि वह समाज और प्रकृति के संरक्षण का साधन भी बन सकता है।

1. अभिलेखों में पर्यावरण-संवेदनशील नीतियाँ

अशोक के शिलालेख केवल धार्मिक या राजनीतिक आदेश नहीं थे, बल्कि उनमें लोक-कल्याण और प्रकृति-संरक्षण की गहरी भावना निहित थी। उन्होंने सड़कों के किनारे छायादार वृक्ष लगाने का आदेश दिया ताकि यात्रियों को सुविधा मिल सके। कुओं और विश्रामगृहों का निर्माण कराया, जिससे ग्रामीण और शहरी जनता को जल और विश्राम की व्यवस्था उपलब्ध हो। पशुओं के लिए चरागाह और चिकित्सा सुविधाओं का प्रावधान भी किया गया। इन व्यवस्थाओं से यह सिद्ध होता है कि अशोक का शासन मानव और प्रकृति के सहअस्तित्व पर आधारित था।

* शोधार्थी, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर (उ०प्र०)

2. जीव-जंतु संरक्षण

अशोक के आदेशों में पशुओं और पक्षियों के प्रति करुणा का उल्लेख बार-बार मिलता है। उन्होंने अनावश्यक शिकार, बलि और हिंसा पर रोक लगाने का प्रयास किया। पाँचवें शिलालेख में स्पष्ट किया गया है कि कुछ विशेष दिनों पर मांसाहार पर पूर्ण प्रतिबंध रहेगा। पशुओं के लिए चिकित्सालयों की स्थापना और औषधियों की व्यवस्था भी की गई। इस प्रकार उनकी नीति केवल धार्मिक आदर्शों तक सीमित नहीं रही, बल्कि सामाजिक-नैतिक दायित्व का रूप धारण कर गई।

3. जन-जीवन पर प्रभाव

अशोक की नीतियों का प्रत्यक्ष प्रभाव समाज पर पड़ा। वृक्षारोपण और जल-संरक्षण से ग्रामीण किसानों और यात्रियों को लाभ हुआ। सड़कों के किनारे वृक्ष एवं कुएँ कृषि-व्यवस्था और व्यापार दोनों के लिए सहायक बने। पशु-संरक्षण से पशुपालन और कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था को बल मिला। इस प्रकार उनकी नीतियाँ केवल उपदेशात्मक न होकर व्यावहारिक और उपयोगी सिद्ध हुईं।

4. सांस्कृतिक और दार्शनिक पृष्ठभूमि

अशोक की नीतियों का आधार भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में निहित था। वैदिक साहित्य में 'पृथ्वी सूक्त' और 'वरुण सूक्त' में प्रकृति की महत्ता प्रतिपादित की गई है। बौद्ध दर्शन में अहिंसा और करुणा की अवधारणाएँ प्रमुख हैं। कलिंग युद्ध के पश्चात जब अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाया, तो इन सिद्धांतों ने उनकी नीतियों को गहराई से प्रभावित किया। अतः उनकी पर्यावरण-संवेदनशीलता भारतीय संस्कृति का स्वाभाविक विस्तार थी।

5. आधुनिक संदर्भ में प्रासंगिकता

आज विश्व वनों की कटाई, प्रदूषण और जलवायु परिवर्तन जैसी गंभीर चुनौतियों से जूझ रहा है। अशोक की नीतियाँ इस संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक हैं। वृक्षारोपण और जल-संरक्षण आज भी सतत विकास की अनिवार्य आवश्यकता है। पशु-संरक्षण और जैव-विविधता की रक्षा के बिना पारिस्थितिक संतुलन संभव नहीं। शासन और समाज के समन्वय से ही पर्यावरणीय संकटों का समाधान संभव हो सकता है। अशोक की धम्म नीति इसी समन्वय का आदर्श प्रस्तुत करती है।

अशोक की नीतियाँ यह दर्शाती हैं कि शासन केवल प्रशासनिक और राजनीतिक कार्यों तक सीमित न रहकर सामाजिक उत्तरदायित्व और पर्यावरणीय संरक्षण का संवाहक भी होना चाहिए। उनका दृष्टिकोण मानवीय करुणा, सांस्कृतिक परंपरा और व्यवहारिक नीति का संगम था। आधुनिक संदर्भ में यह दृष्टि हमें यह सिखाती है कि सतत विकास तभी संभव है जब समाज और शासन दोनों मिलकर प्रकृति के साथ संतुलित संबंध बनाए रखें।

निष्कर्ष

सम्राट अशोक भारतीय इतिहास में एक ऐसे शासक के रूप में प्रतिष्ठित हैं जिन्होंने करुणा, धर्मनीति और पर्यावरणीय चेतना को राज्य-प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया। उनके द्वारा किए गए वृक्षारोपण, जलस्रोत संरक्षण, जीव-जंतुओं की रक्षा और चिकित्सा सुविधाओं के उपाय केवल मौर्यकालीन समाज तक सीमित नहीं रहे, बल्कि आज की परिस्थितियों में भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं। अशोक का आदर्श हमें यह संदेश देता है कि जब तक शासन और समाज प्रकृति के साथ संतुलित संबंध नहीं स्थापित करेंगे, तब तक सतत विकास संभव नहीं। इस दृष्टि से अशोक न केवल भारत की सांस्कृतिक धरोहर के संवाहक हैं, बल्कि आधुनिक पर्यावरणीय विमर्श के भी प्रेरक आदर्श हैं।

संदर्भ सूची

1. उपाध्याय, रामजी. (2010). *मौर्यकालीन भारत*. दिल्ली: प्रकाशन संस्थान।
2. Thapar, R. (2012). *Ashoka and the decline of the Mauryas*. Delhi: Oxford University Press.
3. पांडेय, आर. बी. (2005). *अशोक के अभिलेखों का अध्ययन*. वाराणसी: भारतीय विद्या भवन।
4. आल्टेकर, ए. एस. (2008). *मौर्य साम्राज्य का इतिहास*. पटना: विद्यार्थी प्रकाशन।
5. जौली, भगवतराव. (2007). *भारतीय अभिलेखों का इतिहास*. वाराणसी: चौखंबा प्रकाशन।
6. शर्मा, रामशरण. (2006). *प्राचीन भारत की सामाजिक और आर्थिक संरचना*. दिल्ली: मनीष प्रकाशन।
7. नाहर, पी. एल. (2009). *अशोक के शिलालेखों की व्याख्या*. मुंबई: भारतीय विद्या भवन।
8. दत्त, नीलकंठ. (2011). *मौर्यकालीन संस्कृति और समाज*. इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन।
9. Singh, U. (2009). *A history of ancient and early medieval India*. Delhi: Pearson.
10. Mukherjee, R. K. (1951). *Chandragupta and Ashoka*. Calcutta: University Press.
11. चौधरी, के. के. (2014). *भारतीय संस्कृति और पर्यावरण*. दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ।
12. Mallik, S. (2010). *Ancient Indian inscriptions*. Delhi.

13. वर्मा, एच. सी. (2003). *अशोक और धर्मनीति*. वाराणसी: भारती प्रकाशन।
14. Ghosh, A. (1999). *Indian archaeology and epigraphy*. Delhi: Oxford University Press.
15. Singh, K. (2012). *A history of India*. New Delhi: Penguin Books.
16. मिश्रा, एम. (2004). *अशोक और भारतीय संस्कृति*. इलाहाबाद: साहित्य भवन।
17. Smith, V. A. (1924). *The early history of India*. London: Oxford University Press.
19. उपाध्याय, धर्मराज. (2010). *भारतीय धर्म और संस्कृति*. दिल्ली: National Publishing House.
20. Natarajan, S. (1988). *Mauryan India*. Madras: Tamil University Press.
21. Basu, D. K. (1995). *Studies in Indian history and culture*. Calcutta.



माध्यमिक स्तर पर राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षणरत् पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. एस. पी. सिंह वत्स*
अनूप कुमार यादव**

सारांश

प्रस्तुत शोध का मुख्य उद्देश्य माध्यमिक स्तर पर राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना है। शिक्षक की कार्य-संतुष्टि न केवल उसके व्यक्तिगत जीवन को प्रभावित करती है, अपितु विद्यालय प्रकार, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया तथा विद्यार्थियों की उपलब्धि से भी प्रत्यक्ष रूप से जुड़ी होती है। वर्तमान अध्ययन में यह विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि के स्तर में किस प्रकार का अंतर विद्यमान है और इसके लिए उत्तरदायी प्रमुख कारक कौन-कौन से हैं। यह अध्ययन वर्णनात्मक सर्वेक्षण पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के परिणामों से यह तथ्य स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आया कि राजकीय एवं अनुदानित विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि का स्तर अपेक्षाकृत अधिक पाया गया, जबकि स्ववित्तपोषित विद्यालयों के शिक्षकों में यह स्तर कुछ कम रहा। इसका प्रमुख कारण कार्य-सुरक्षा, वेतन व्यवस्था, सेवा शर्तों तथा प्रशासनिक सहयोग की असमानता मानी जा सकती है।

मुख्य शब्द : कार्य-संतुष्टि, शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया, माध्यमिक स्तर, विद्यालय प्रकार, शैक्षिक उपलब्धि।

प्रस्तावना

शिक्षा को किसी भी समाज के समग्र विकास का मूल आधार माना जाता है तथा इस प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। माध्यमिक स्तर पर शिक्षण कार्य करने वाले शिक्षक विद्यार्थियों को केवल विषयवस्तु का ज्ञान ही नहीं देते, बल्कि उनके दृष्टिकोण, अनुशासन तथा भविष्य की दिशा को भी प्रभावित करते हैं। इस स्तर पर शिक्षक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह शैक्षणिक दायित्वों के साथ-साथ सामाजिक उत्तरदायित्वों का भी निर्वहन करे। ऐसी स्थिति में शिक्षक की कार्य-संतुष्टि एक आवश्यक पक्ष बन जाती है, क्योंकि असंतुष्ट शिक्षक से गुणवत्तापूर्ण शिक्षण की अपेक्षा करना कठिन हो जाता है। कार्य-संतुष्टि को सामान्यतः व्यक्ति की उस मानसिक स्थिति के रूप में समझा जाता है, जिसमें वह अपने कार्य, कार्य-परिस्थितियों तथा उससे जुड़े लाभों के प्रति संतुलित अनुभव करता है। यदि शिक्षक को अपने कार्य-पर्यावरण, वेतन, पद-सुरक्षा, प्रशासनिक सहयोग अथवा पदोन्नति के अवसरों से असंतोष रहता है, तो उसका प्रभाव उसकी कार्य-दक्षता पर अवश्य पड़ता है। कई बार यह देखा गया है कि असंतोष की स्थिति में शिक्षक का शिक्षण के प्रति रुचि स्तर कम हो जाता है, जिससे शैक्षिक प्रक्रिया भी प्रभावित होती है।

वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में विद्यालय मुख्यतः राजकीय, अनुदानित तथा स्ववित्तपोषित श्रेणियों में विभाजित हैं। इन विद्यालयों की प्रशासनिक व्यवस्था, सेवा-शर्तें, वेतन-संरचना तथा कार्य-सुरक्षा की प्रकृति एक-दूसरे से भिन्न पाई जाती है। यही भिन्नताएँ शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से

* (शोध निर्देशक) एसोसिएट प्रोफेसर, कमला नेहरू भौतिकी एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुल्तानपुर (डॉ० राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या, उ० प्र०)

** शोध छात्र, कमला नेहरू भौतिकी एवं सामाजिक विज्ञान संस्थान, सुल्तानपुर

Email: anoop311285@gmail.com

प्रभावित करती हैं। विशेष रूप से पुरुष शिक्षकों के संदर्भ में यह देखा गया है कि पारिवारिक उत्तरदायित्व, सामाजिक अपेक्षाएँ तथा आर्थिक दायित्व उनकी कार्य-संतुष्टि से गहराई से जुड़े रहते हैं, परन्तु इस पक्ष पर अपेक्षित रूप से कम ध्यान दिया गया है। इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर पर राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षणरत् पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की वास्तविक स्थिति को समझने का प्रयास करता है। अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष शैक्षिक प्रशासकों एवं नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं, जिससे भविष्य में ऐसी नीतियाँ बनाई जा सकें जो शिक्षक-हित के अनुकूल हों और शिक्षा की गुणवत्ता में अपेक्षित सुधार हो सके।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

पाण्डे (2025) के अध्ययन में, “ऊधम सिंह नगर के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण पुरुष शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में आंशिक अन्तर पाया गया। ऊधम सिंह नगर के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शहरी पुरुष शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया। ऊधम सिंह नगर के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत ग्रामीण महिला शिक्षिकाओं की कार्य सन्तुष्टि में सार्थक अन्तर पाया गया। ऊधम सिंह नगर के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शहरी महिला शिक्षिकाओं की कार्य सन्तुष्टि में आंशिक अन्तर पाया गया”¹

यादव (2024) के अनुसार, “शिक्षक व शिक्षिकाओं की कार्यसंतुष्टि एवं उसके विभिन्न क्षेत्रों में से नौकरी के आंतरिक पहलू, वेतन, पदोन्नति एवं सेवा शर्तें, भौतिक सुविधायें संस्थागत योजना एवं नीतियां, अधिकारियों से संतुष्टि, सामाजिक स्थिति और पारिवारिक संतुष्टि तथा विद्यार्थियों के साथ तालमेल के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है। शिक्षक व शिक्षिकाओं की कार्यसंतुष्टि में कोई अंतर नहीं है। कार्यसंतुष्टि के केवल एक क्षेत्र सहकार्यकर्ताओं के साथ सम्बन्ध में अन्तर हुआ शिक्षिकाओं की तुलना में शिक्षकों की कार्यसंतुष्टि अधिक पायी गयी”²

राकेश कुमार (2024) के अध्ययन से पता चलता है कि, नियमित अध्यापकों में से अधिकाँश ने अपने कार्यगत संतुष्टि के स्तर को उँचा तथा बहुत उँचा बतलाया है जबकि संविदा अध्यापकों में से अधिकाँश ने अपने कार्य संतुष्टि के स्तर को औसत स्तर या औसत से अधिक बतलाया है। दोनों में से किसी भी समूह ने कार्य संतुष्टि के स्तर को अत्यन्त निम्न नहीं बतलाया है। इससे स्पष्ट होता है कि संविदा अध्यापकों के कार्य संतुष्टि का स्तर नियमित अध्यापकों की तुलना में निम्न है”³

राज अमन (2024) के शोध अध्ययन में “बिहार के सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों में निजी विद्यालयों के शिक्षकों की तुलना में कार्य संतुष्टि की अधिकता पाई गई। बिहार के सरकारी व निजी विद्यालयों में कार्यरत पुरुष एवं महिला शिक्षिकाओं में तुलनात्मक रूप से कार्य संतुष्टि स्तर में सार्थक अंतर स्पष्ट रूप से नहीं पाया गया। बिहार के सरकारी व निजी विद्यालयों के शिक्षकों में अध्यापन अनुभव के आधार पर कार्य संतुष्टि स्तर में सार्थक अंतर पाया गया। बिहार के सरकारी एवं निजी विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के शैक्षिक योग्यता के आधार पर कार्य संतुष्टि के स्तर में कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया गया”⁴

मालवीय (2023) के अध्ययन से पता चलता है कि, “शिक्षक की प्रभावशीलता के साथ नौकरी की संतुष्टि का एक उच्च महत्वपूर्ण सकारात्मक संबंध है। नौकरी की संतुष्टि का शिक्षक प्रभावशीलता के पेशेवर आयाम के साथ मजबूत संबंध है। व्यावसायिक संतुष्टि और शिक्षक संबंध आयामों का शिक्षक प्रभावशीलता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। तो यह कहा जा सकता है कि, उच्च नौकरी की संतुष्टि शिक्षक की प्रभावशीलता को बढ़ा सकती है”⁵

देशमुख (2023) के अध्ययन में “शहरी क्षेत्र के माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत उच्च एवं निम्न कार्य-संतुष्टि वाली महिला शिक्षकों के मध्य 'संस्था के शैक्षिक एवं सामान्य पर्यावरण के साथ समायोजन' में सार्थक अंतर

पाया गया तथा उच्च कार्य- संतुष्टि वाली महिला शिक्षकों का 'संस्था के शैक्षिक एवं सामान्य पर्यावरण के साथ समायोजन', निम्न कार्य-संतुष्टि वाली महिला शिक्षकों से बेहतर पाया गया।⁶

शोध-अंतराल

कार्य-संतुष्टि से संबंधित उपलब्ध शोध साहित्य के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इस विषय पर अनेक अनुसंधान किए जा चुके हैं, परंतु उनमें से अधिकांश अध्ययन सामान्य रूप से शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि अथवा उससे जुड़े अन्य पक्षों तक ही सीमित रहे हैं। कई शोध प्राथमिक या उच्च शिक्षा स्तर पर केन्द्रित पाए जाते हैं, जबकि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के संदर्भ में अपेक्षित गहन अध्ययन कम देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त, अधिकांश शोधों में राजकीय विद्यालयों को ही प्रमुखता दी गई है, जिसके कारण अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की वास्तविक स्थिति पर्याप्त रूप से सामने नहीं आ पाई है। विशेष रूप से पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि के संदर्भ में शोध साहित्य में एक स्पष्ट अंतराल दिखाई देता है। प्रायः अध्ययनों में लिंग को केवल एक सामान्य चर के रूप में स्वीकार किया गया है, परंतु पुरुष शिक्षकों की सामाजिक भूमिका, आर्थिक दायित्व तथा पारिवारिक जिम्मेदारियों के संदर्भ में उनकी कार्य-संतुष्टि का पृथक रूप से विश्लेषण नहीं किया गया है। साथ ही, विभिन्न प्रकार के विद्यालयों—राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित—में कार्यरत पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन भी बहुत सीमित रूप में उपलब्ध है। अतः प्रस्तुत शोध इस विद्यमान शोध-अंतराल को भरने का एक प्रयास है।

अध्ययन के उद्देश्य

- माध्यमिक स्तर पर राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षणरत् पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध परिकल्पना

- माध्यमिक स्तर पर राजकीय, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षणरत् पुरुष शिक्षकों की कार्य संतुष्टि में सार्थक अंतर है।

शोध अध्ययन की प्रविधि

• शोध विधि

प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए 'वर्णनात्मक सर्वेक्षण विधि' का प्रयोग किया गया है।

• जनसंख्या, प्रतिचयन विधि एवं प्रतिदर्श

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयागराज मण्डल में विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों (राजकीय, अनुदानित और स्ववित्तपोषित) में कार्यरत सभी पुरुष शिक्षक शामिल हैं। जनसंख्या से प्रतिदर्श चयन के लिए यादृच्छिक प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया गया। प्रतिदर्श चयन के लिए प्रयागराज मंडल से दो जिलों (प्रयागराज एवं प्रतापगढ़) का चयन किया गया। अब प्रयागराज जिले से 75 पुरुष शिक्षक चुने गए, जिनमें सभी तीन विद्यालय प्रकार; राजकीय, अनुदानित और स्ववित्तपोषित समान रूप से (प्रत्येक से 25 पुरुष शिक्षक) शामिल थे। इसी प्रकार प्रतापगढ़ जनपद से भी 75 पुरुष शिक्षकों का चयन किया गया। इस तरह कुल मिलाकर राजकीय विद्यालय से 50, अनुदानित विद्यालय से 50 और स्ववित्तपोषित विद्यालय से 50 अर्थात् कुल मिलाकर 150 पुरुष शिक्षकों का चयन किया गया।

• शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में प्रो. मीरा दीक्षित द्वारा शिक्षकों के लिए निर्मित 'कार्य संतुष्टि मापनी' का प्रयोग किया गया है।

- **प्रदत्त विश्लेषण विधि**

इस अध्ययन में प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए 'एकमार्गीय प्रसरण विश्लेषण' एवं 'पोस्ट-हॉक परीक्षण' का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या

Table- 4.2.7				
One-Way ANOVA (Fisher's)				
	F	df1	df2	p
Job Satisfaction Score	9.31	2	147	<.001

प्रस्तुत एक-मार्गीय प्रसरण विश्लेषण प्रदर्शित करता है कि पुरुष शिक्षकों के कार्य-सन्तुष्टि प्राप्तांक के सन्दर्भ में विभिन्न समूहों के मध्य उल्लेखनीय अंतर विद्यमान है अतः इस शून्य परिकल्पना को भी अस्वीकृत किया जाता है। प्राप्त F-मूल्य 9.31 है तथा इसके लिए df₁ का मान 2 एवं df₂ का मान 147 है। साथ ही p-मूल्य 0.001 से कम होने के कारण यह परिणाम सांख्यिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि विभिन्न समूहों की कार्य-सन्तुष्टि का स्तर समान नहीं है बल्कि उनमें पर्याप्त भिन्नता है। कहा जा सकता है कि अध्ययन में सम्मिलित स्वतंत्र चर (विद्यालय-प्रकार) का प्रभाव शिक्षकों के कार्य-सन्तुष्टि पर पड़ता है।

Table- 2				
Tukey Post-Hoc Test – Job Satisfaction Scores of Male Teachers				
		Aided	Government	Self Finance
Aided	Mean difference	—	-2.1	8.9
	t-value	—	-0.78	3.29
	df	—	147	147
	p-value	—	0.718	0
Government	Mean difference		—	11
	t-value		—	4.06
	df		—	147
	p-value		—	<.001
Self Finance	Mean difference			—
	t-value			—
	df			—
	p-value			—

प्रस्तुत पोस्ट-हॉक परीक्षण के परिणामों के आधार पर स्पष्ट होता है कि पुरुष शिक्षकों के कार्य-सन्तुष्टि के स्तर में विभिन्न प्रकार के विद्यालयों के सन्दर्भ में समान प्रवृत्ति नहीं पाई जाती है। अनुदानित एवं सरकारी विद्यालयों में कार्यरत पुरुष शिक्षकों के कार्य-सन्तुष्टि के औसत अंकों के मध्य 2.1 का अंतर प्राप्त हुआ है जिसका t-मूल्य 0.78 तथा p-मूल्य 0.718 है। यह p-मूल्य स्वीकृत सार्थकता स्तर से अधिक होने के कारण यह संकेत देता है कि इन दोनों श्रेणियों के पुरुष शिक्षकों के कार्य-सन्तुष्टि में सांख्यिकीय रूप से कोई महत्वपूर्ण अंतर नहीं पाया जाता है अर्थात् दोनों के कार्य-सन्तुष्टि स्तर को लगभग समान माना जा सकता है।

इसके विपरीत, अनुदानित एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के कार्य-सन्तुष्टि प्राप्तांक में 8.9 का अंतर देखा गया है। इस तुलना में प्राप्त t-मूल्य 3.29 तथा p-मूल्य शून्य के निकट पाया गया है जो यह दर्शाता है कि इन दोनों समूहों के बीच कार्य-सन्तुष्टि का अंतर सांख्यिकीय दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार सरकारी एवं स्ववित्तपोषित विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों के मध्य कार्य-सन्तुष्टि के औसत अंकों में 11 का अंतर प्राप्त हुआ है जहाँ t-मूल्य 4.06 तथा p-मूल्य 0.001 से कम पाया गया है जिससे यह अंतर भी अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रस्तुत अध्ययन के सांख्यिकीय विश्लेषण से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि माध्यमिक स्तर पर विभिन्न प्रकार के विद्यालयों में शिक्षणरत् पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि में महत्वपूर्ण अंतर विद्यमान है। एकमार्गीय विचरण विश्लेषण के परिणाम यह स्पष्ट करते हैं कि विद्यालय के प्रकार का प्रभाव शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि पर पड़ता है। पोस्ट-हॉक परीक्षण के माध्यम से यह तथ्य सामने आया कि राजकीय एवं अनुदानित विद्यालयों के पुरुष शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि लगभग समान स्तर की है, जबकि स्ववित्तपोषित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि अपेक्षाकृत निम्न स्तर की पाई गई है।

यह भी देखा गया है कि स्ववित्तपोषित विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों को कार्य-सुरक्षा, वेतन-स्थिरता तथा सेवा-शर्तों के संदर्भ में पर्याप्त संतोष प्राप्त नहीं हो पाता है, जिसके कारण उनकी कार्य-संतुष्टि प्रभावित होती है। इसके विपरीत, राजकीय एवं अनुदानित विद्यालयों में अपेक्षाकृत निश्चित सेवा-नियम शिक्षकों में सुरक्षा एवं संतुलन की भावना उत्पन्न करते हैं।

अध्ययन के निष्कर्ष के आधार पर सुझाव दिया जा सकता है कि, स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षकों की सेवा-शर्तों पर पुनर्विचार किया जाना चाहिए। वेतन-संरचना में समानता लाने, प्रशासनिक व्यवहार को सहयोगात्मक बनाने तथा शिक्षकों को व्यावसायिक उन्नति के अवसर उपलब्ध कराने की आवश्यकता है। यदि इन पक्षों पर उचित ध्यान दिया जाए तो शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि में अपेक्षित सुधार संभव है।

शैक्षिक निहितार्थ

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट शैक्षिक निहितार्थ उभरकर सामने आता है कि शिक्षक की कार्य-संतुष्टि शिक्षा-गुणवत्ता का एक महत्वपूर्ण निर्धारक तत्व है। कार्य-संतुष्ट शिक्षक न केवल अपने दायित्वों का बेहतर ढंग से निर्वहन करता है, बल्कि शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को भी अधिक प्रभावी बनाता है। यदि किसी विद्यालय व्यवस्था में शिक्षक असंतोष की स्थिति में कार्य कर रहे हों, तो उसका प्रतिकूल प्रभाव विद्यार्थियों के शैक्षिक विकास पर पड़ना स्वाभाविक है।

यह अध्ययन शैक्षिक प्रशासकों का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट करता है कि स्ववित्तपोषित विद्यालयों में शिक्षकों की उपेक्षा दीर्घकाल में संस्थागत गुणवत्ता को प्रभावित कर सकती है। नीति-निर्माताओं के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वे शिक्षकों की कार्य-संतुष्टि को एक गौण विषय न मानते हुए, उसे शैक्षिक सुधार की मुख्य धारा में सम्मिलित करें।

साथ ही, शिक्षक-कल्याण से संबंधित योजनाओं को सभी प्रकार के विद्यालयों में समान रूप से लागू करने की आवश्यकता प्रतीत होती है। इससे न केवल शिक्षकों में संतोष की भावना विकसित होगी, बल्कि विद्यालयों का शैक्षिक वातावरण भी अधिक सकारात्मक और उद्देश्यपूर्ण बन सकेगा।

सन्दर्भ

1. पाण्डे, पी. (2025). *उधम सिंह नगर के वित्तपोषित एवं स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि, सामाजिक-आर्थिक स्तर एवं पारिवारिक संबंधों का तुलनात्मक अध्ययन* (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध). मदनहुड विश्वविद्यालय, रुड़की, पृष्ठ 147, <https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/656055>
2. यादव, आर. एन. (2024). *माध्यमिक स्तर के ग्रामीण व शहरी विद्यालयों के शिक्षकों की शिक्षा अभिवृत्ति, कार्य संतुष्टि व अध्यापन दक्षता पर मानसिक स्वास्थ्य के प्रभाव का अध्ययन* (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध). शिब्ली नेशनल पी. जी. कॉलेज, आजमगढ़, पृष्ठ 155, <https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/581545>

3. राकेश कुमार (2024). *संविदा एवं नियमित रूप से नियुक्त शिक्षकों में व्यावसायिक चिन्ता, तनाव, समायोजन एवं कार्य संतुष्टि का उनके पारिवारिक कारकों के संदर्भ में एक तुलनात्मक अध्ययन* (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध). पटना विश्वविद्यालय, पटना, पृष्ठ 82, <https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/633689>
4. राज अमन (2024). *बिहार के सरकारी व निजी विद्यालयों के शिक्षकों के व्यावसायिक तनाव, कार्य संतुष्टि और समायोजन का एक तुलनात्मक अध्ययन* (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध). वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, बिहार, पृष्ठ 139, <https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/626913>
5. मालवीय, एम. (2023). *उत्तर प्रदेश के स्नातक महाविद्यालयों के शिक्षकों की कार्य सन्तुष्टि और शिक्षण प्रभावशीलता का तुलनात्मक अध्ययन* (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध). ग्लोकल विश्वविद्यालय, सहारनपुर, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 55, <https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/641424>
6. देशमुख, जी. (2023). *माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों के समायोजन पर उनकी कार्य संतुष्टि के प्रभाव का अध्ययन* (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध). राम कृष्ण धर्मार्थ फाउंडेशन विश्वविद्यालय, भोपाल, पृष्ठ 193, <https://shodhganga.inflibnet.ac.in/handle/10603/542553>



दिव्यांगता कल्याण नीति का समाजशास्त्रीय अध्ययन

शिवांगी यादव*

डॉ. सन्तोष कुमार सिंह**

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत संवैधानिक निर्माण की प्रक्रिया ने नागरिकों के मध्य समानता, स्वतंत्रता, न्याय एवं गरिमा सुनिश्चित करने का प्रारूप न केवल सैद्धांतिक रूप में निर्मित किया गया है वरन् इसे व्यावहारिक रूप में भी सम्प्रेषित करने का प्रभावी निर्माण किया है। जिससे सामाजिक न्याय और अधिकारिता का विस्तार हो सके तथा व्यक्ति गुणवत्तापूर्ण जीवन व्यतीत कर सके। यह स्थिति यद्यपि सामान्यजन के लिए अधिक उपयोगी तथा प्रभावशाली न होकर के उन्हें जीवन जीने की कला के रूप में स्पष्ट करता है किंतु विशिष्टता के सन्दर्भ में इस प्रकार की न्याय संगत अधिपत्यता तथा उसके स्वरूप और वर्गीकरण मानक को निर्धारित करते हैं। दिव्यांगता से सम्बन्धित मानक के वर्गीकरण को सर्वप्रथम **विश्व स्वास्थ्य संगठन** द्वारा निर्धारित किया गया। जिसमें यह माना गया की अक्षमता तथा निश्चिन्ता के सम्प्रत्यय को समझते हुए दिव्यांगता से सम्बन्धित आवश्यक तथा उपयोगी सिद्धांत को निर्मित किया जाय विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा सन 1990 में दिव्यांगता के क्षेत्र में अंतर्राष्ट्रीय मानक निर्धारित करने की दिशा में एक स्थायी वर्गीकरण की व्यवस्था को स्थापित किया गया है इस व्यवस्था का मूल स्वरूप चिकित्सकीय मॉडल व्यवस्था पर आधारित था 20वीं सदी के अंतिम दो दशकों में सामान्य रूप से यह स्वीकार किया गया कि दिव्यांग जनों के साथ सामाजिक न्याय सिर्फ दिव्यांगता के आधार पर उन्हें सहानुभूति के माध्यम से प्रदान नहीं किया जा सकता है वरन् इसके लिए नीतिगत निर्णय और निर्माण की आवश्यकता है। जिसके अनुरूप समाज को भी परिवर्तित होना होगा। वर्गीकरण से निर्धारित नियम इस आधार पर थे कि समसामयिक समाज में दिव्यांगता के सन्दर्भ में जो मानसिकता निश्चित है उसे सुनिश्चित सैद्धान्तिक परिवेश में परिवर्तित करने के लिए विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अविलम्ब तथा गम्भीरतापूर्वक समाज के सभी परिस्थितियों में इसे स्वीकार करना अनिवार्य माना गया है। वर्ष 2000 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चिकित्सकीय प्रारूप व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए इसे सामाजिक प्रारूप व्यवस्था पर आधारित नई नीति के रूप में स्थापित किया। जिसका मूल कारण था कि चिकित्सा केवल परीक्षण और निराकरण के सैद्धान्तिक परिवेश को निर्मित करके उसे व्यवस्था पर आधारित होकर प्रसारित करती रहती है जबकि सामाजिक प्रारूप व्यवस्था के अन्तर्गत इसे क्रियान्वित करने के लिए सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था से उनकी समता तथा उनके मध्य सामाजिक व्यवस्था को स्थापित करना होगा। भारत में दिव्यांगता के क्षेत्र में सर्वप्रथम नियमबद्धता की प्रवृत्ति का विकास दृष्टिबाधित पर ध्यान केंद्रित करके निर्मित किया गया। ब्रिटिश शासन काल में सन 1942 में अंधता के कारण, निवारण व कल्याण हेतु एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने शिक्षा मंत्रालय के अनुरूप एक इकाई को स्थापित करने की संस्कृति सहित सिफारिश की। यह इकाई सन् 1947 में बनायी गयी और कुछ समय के पश्चात अन्य प्रकार की दिव्यांगता वाले सभी जनों के लिए निश्चित तथा निर्धारित कार्यक्रम विशिष्ट व्यवस्था के अनुरूप निर्मित किया गया। ब्रिटिश शासन काल में **चार प्रकार** की दिव्यांगता पर ही विचार किया गया था। जिसमें दृष्टिबाधिता, श्रवणबाधिता, मानसिक पिछड़ापन और गत्यात्मक असमर्थता। इस प्रकार ब्रिटिश शासन काल में दिव्यांगता से सम्बन्धित, निर्मित अधिनियम को औपचारिक रूप से दिव्यांगता की मान्यता प्राप्त थी किंतु समय परिवर्तन के पश्चात इस प्रकार की मान्यता के विस्तार न होने के कारण इसे अस्वीकार कर दिया गया।

दिव्यांगता नीति सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों के अन्तर्गत :- भारत की जनगणना 2011 के अनुसार भारत में कुल दिव्यांग व्यक्तियों में से 64 प्रतिशत दिव्यांग व्यक्ति भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत अपना कोई विशेष योगदान नहीं देते हैं अथवा व्यावहारिक रूप में कहा जा सकता है कि वह संरक्षक निष्क्रियताओं के

* शोध छात्रा समाजशास्त्र विभाग, नारायण पी. जी. कालेज शिकोहाबाद, सम्बद्ध डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा (उत्तर प्रदेश)

** असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, नारायण पी. जी. कालेज शिकोहाबाद, सम्बद्ध डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा (उत्तर प्रदेश)

कारण विशेष योगदान नहीं कर पाते हैं। दिव्यांग व्यक्तियों के सन्दर्भ में सरकार मान्यताओं और विचारधाराओं के स्थान पर सैद्धान्तिक परिवेश को निर्मित करने का प्रयास करती है। भारत में कुल जनसंख्या का 2.21 प्रतिशत आबादी दिव्यांगता से प्रभावित है। जिनकी संख्या 2.68 करोड़ मानी जाती है। ऐसे व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की दिव्यांगता से प्रभावित हैं। दिव्यांगता के सन्दर्भ में यह माना जाता है कि कुल दिव्यांग व्यक्तियों में से 1.50 करोड़ पुरुष और 1.18 करोड़ स्त्रियाँ हैं। यह आँकड़े जनगणना 2011 की प्रवृत्ति का विश्लेषण है। इस जनगणना के अन्तर्गत दृष्टिबाधित 18.80 प्रतिशत तथा श्रवणबाधित 18.90 प्रतिशत, वॉक बाधित 07.50 प्रतिशत चलनबाधित 20.30 प्रतिशत मानसिक रोगी 2.70 प्रतिशत मानसिक मंदता 05.060 प्रतिशत बहुदिव्यांगता 07.50 प्रतिशत तथा अन्य दिव्यांगताओं से ग्रसित व्यक्ति 18.40 प्रतिशत हैं।

वर्तमान समय में दिव्यांग व्यक्तियों से सम्बन्धित अधिकार तथा अधिनियम 2016 के पारित होने के पश्चात दिव्यांगता को 21 प्रकार की श्रेणियों में विभाजित किया गया है। इन श्रेणियों को पाँच निम्न भागों के अन्तर्गत व्यावहारिक रूप से स्वीकार किया गया है। **प्रथम** को शारीरिक दिव्यांगता जिसके अन्तर्गत चलने फिरने की असमर्थता चलनदिव्यांगता कुष्ठ रोग प्रभावित व्यक्ति, भावनापन, मस्तिष्क पक्षाघात, मांसपेशीविकार, एसिड हमले के शिकार, अंधता, कम दृष्टि, बहरापन, ऊँचा सुनना, बोलना और भाषा की दिव्यांगता को सम्मिलित किया गया है जबकि **द्वितीय** के अन्तर्गत बौद्धिक दिव्यांगता को सम्मिलित किया गया है बौद्धिक दिव्यांगता के अन्तर्गत बौद्धिक क्षमता, विशेष सीखने की क्षमता, ऑटिज्म स्पेक्ट्रम, विकार मानसिक व्यवहार, बहुविधि ऊतक, पार्किंसन रोग, रक्त विकार, बहुदिव्यांगता से सम्बन्धित दिव्यांगता को रखा गया है। यह स्थिति भारत में दिव्यांगता की श्रेणी के विभाजन को दर्शाती है

दिव्यांगों के कल्याण और विकास का दायित्व राष्ट्र के नीति निर्माता के संवैधानिक प्रक्रिया के अनुसरण तथा विकास पर निश्चित है। दिव्यांगता के कल्याण को ध्यान में रखते हुए नीति-निर्माता ने विकास के प्रत्येक पक्ष को उनको समाहित करने के लिए उनकी आवश्यकता की अनुरूप नीति-नियम, भूमिकाएँ, कार्य तथा उद्देश्यों को निर्मित किया है जिससे विकास पारस्परिक प्रयास के परिणाम से प्राप्त हो सकें और समाज के सभी लोगों की भागीदारी सुनिश्चित हो। इस उद्देश्य की प्रतिपूर्ति के लिए दिव्यांगता के क्षेत्र में सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों ने भी अपनी सक्रिय भूमिका निभायी। एक ओर जहाँ सरकारी संगठन का कार्य जनसामान्य को लाभान्वित करने का है वहीं दूसरी ओर गैर सरकारी संगठन, राज्य सरकारों और जनसामान्य के मध्य एक संयोजन की भूमिका का निर्वहन करते हुए बुनियादी स्तर की सामाजिक-आर्थिक तथा अन्य आवश्यकताओं की प्राप्ति में सहायक की भूमिका को निभाते हैं। इसका मूल कारण है कि सरकारी संसाधन सीमित है तथा उनकी उपलब्धता प्रत्येक व्यक्ति तक लाभार्थी के रूप में सुविधा प्राप्त नहीं हो पाती है जिससे गैर सरकारी संगठन अपने विविधतापूर्ण कार्य क्षेत्र संरचनात्मकता इत्यादि से प्रभावित होकर सरकार के नीतियों का विस्तार करते हुए आवश्यक लोगों को उनके उत्तरदायी सहयोग को प्रदत्त करते हैं।

दिव्यांग समायोजन हेतु सरकारी संगठनों की भूमिका :- लोकतांत्रिक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत दिव्यांग व्यक्तियों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए उन्हें उचित वातावरण सहित सामाजिक-आर्थिक, शैक्षिक तथा व्यावसायिक आधार पर निरन्तर सहयोग प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है जिनका समय-समय पर समीचीन मूल्यांकन भी किया जा रहा है। सरकार द्वारा किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप अनेक अल्पावधि अथवा दीर्घावधि की योजनाओं का संचालन समरूप से संचालित है। जिसका प्रत्यक्ष लाभ दिव्यांगों को योजनाओं के रूप में प्राप्त हो रहा है। इनमें से कुछ योजनाएँ कल्याण के सन्दर्भ में समय अन्तराल के अनुरूप प्राप्त हो रही हैं तथा कुछ योजनाएँ अल्प समय अंतराल तथा अत्यधिक आवश्यकता के रूप में त्वरित रूप से प्राप्त हो रही हैं। सरकार अपने नीति के माध्यम से दिव्यांग व्यक्तियों के मानसिक प्रबलता को समृद्ध करने के लिए उनके कार्य, व्यवहार तथा शारीरिक क्षमता के अनुरूप उचित अवसर प्रदान कर रही है जिससे दिव्यांग व्यक्ति व्यावसायिक प्रशिक्षण और रोजगार के अवसरों में सुधार करते हुए स्वयं तथा अपने परिवार के जीवन में गुणवत्तापूर्ण परिवर्तन को प्राप्त करें और वह विकास की मुख्य धारा को सतत रूप से प्राप्त करें। सरकार की इस योजना के परिणामस्वरूप दिव्यांग व्यक्ति राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की परिपाटी में भी प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित होते हैं। विश्व बैंक का मानना है कि दिव्यांग व्यक्तियों को मुख्य धारा की अर्थव्यवस्था से बाहर छोड़ने के कारण देश के सकल घरेलू उत्पाद में **पाँच प्रतिशत** की हानि हो सकती है। यही कारण है कि दिव्यांग व्यक्तियों को प्रशिक्षण और रोजगार के अवसरों को उपलब्ध करने से श्रम शक्ति की कमी की पूर्णता को प्राप्त किया जा सकता है तथा कल्याणकारी, आत्मनिर्भरता से आर्थिक दबाव पर भी

नियंत्रण प्राप्त किया जा सकता है। सरकार संस्थाओं अथवा संगठनों के माध्यम से कार्यक्षेत्र का विस्तार करते हुए विधिक कार्य क्षेत्र में दिव्यांग व्यक्तियों के महत्व को सुनिश्चित करती है जैसे—

1. **राष्ट्रीय दिव्यांग जन वितरण एवं विकास निगम :-** राष्ट्रीय दिव्यांग जन वितरण एवं विकास निगम एक सरकारी संस्था है। जिसकी स्थापना सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय भारत सरकार के अधीनस्थ रूप में है। इसकी स्थापना 24 फरवरी वर्ष 1997 को हुई थी। यह निगम कम्पनी अधिनियम 1956 अनुच्छेद 25 के अन्तर्गत पंजीकृत तथा गैर लाभ वाली वित्तीय कम्पनी है। भारत सरकार के पूर्ण स्वामित्व के अन्तर्गत यह कम्पनी अपने निर्धारित उद्देश्य दिव्यांग व्यक्तियों के लाभार्थ आर्थिक विकास तथा उनके सामाजिक-आर्थिक क्रियाकलापों को सशक्ति प्रदान करते हुए विकास की परिपाटी में विकसित करना है। दिव्यांग व्यक्तियों के लाभ तथा आर्थिक पुनर्वास के लिए अन्य उपक्रमों और स्वरोजगार को प्रोत्साहित करते हुए दिव्यांग व्यक्तियों को रोजगार तथा तकनीकी शिक्षा प्रदान करने के साथ ही साथ उद्यमिता कौशल और विकास में आर्थिक सहायता प्रदान किया जाता है। यह संस्थान राष्ट्रीय स्तर पर दिव्यांगों के वित्त तथा विकास की पूर्णता हेतु प्रतिबद्ध है।
2. **भारतीय कृत्रिम अंग निर्माण निगम :-** यह भारत सरकार का एक गैर लाभकारी उपक्रम है जिसके अन्तर्गत दिव्यांग व्यक्तियों हेतु कृत्रिम अंगों का निर्माण करना तथा गैर मुनाफा की प्रवृत्ति तथा सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए जरूरतमंद दिव्यांगों को कृत्रिम अंग प्रदान करना है। उत्तर प्रदेश के कानपुर शहर में इसका मुख्यालय है और पूरे भारत में इसके 36 स्थापित केंद्र तथा 192 कार्यरत एवं क्रियान्वित एजेंसियों के माध्यम से सरकार के क्रिया-कलाप में यह सहयोग करती है। इसका उद्देश्य शारीरिक रूप से दिव्यांग व्यक्तियों को पुनर्वास की सहायता के क्रम में कृत्रिम अंगों का निर्माण कर उनकी आपूर्ति करना है।
3. **भारतीय पुनर्वास परिषद :-** भारतीय पुनर्वास परिषद के अन्तर्गत बहुआयामी दृष्टिकोण के माध्यम से संचालित कार्यक्रमों तथा क्रियान्वित प्रविधियों को सफल बनाने का प्रयास किया जाता है। दिव्यांगों के सन्दर्भ में यह स्थिति और अधिक प्रभावशाली तथा आवश्यक प्रतीत होती है। इसका मुख्य कारण है कि दिव्यांगों की घटनाओं से सम्बन्धित प्रारम्भिक अवस्था में ही समाधानित करते हुए दूर करने का प्रयास किया जाय। पुनर्वास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य दिव्यांगों को मुख्य धारा में सम्मिलित करते हुए उन्हें स्थायी स्वरूप तथा स्थायित्व प्रदान करना होता है। भारतीय पुनर्वास परिषद के अन्तर्गत संचालित दीनदयाल दिव्यांग पुनर्वास योजना का संचालन निर्वाध गति से वर्तमान समय में भी हो रहा है। यह संस्था कौशल उन्नयन हेतु व्यवसायिक प्रशिक्षकों के साथ ही साथ कार्य प्रवृत्ति तथा व्यापार हेतु आर्थिक सहायता भी प्रदान करती है। इस कार्य योजना के अन्तर्गत कार्य कौशल हेतु 15 से 35 वर्ष की आयु समूह के दिव्यांग व्यक्ति जो आर्थिक आत्मनिर्भरता की दिशा में समृद्ध होना चाहते हैं को सम्मिलित किया जाता है।
4. **राष्ट्रीय न्यास :-** यह दिव्यांगों के सन्दर्भ में तथा उनकी पारिवारिक क्षमता को समृद्ध करने और उनके अधिकारों को प्रदान करने के लिए सकारात्मक रूप से निर्मित एक संस्था है। जिसके माध्यम से समावेशी समाज को निर्मित करने का सकल प्रयास किया जाता है। यह राष्ट्रीय स्तर की संस्था है जो सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय के अन्तर्गत दिव्यांगजन सशक्तिकरण विभाग के अधीनस्थ राष्ट्रीय धारा अधिनियम 44 वर्ष 1999 के अन्तर्गत गठित स्वायत्त संस्था है। इस संस्था का मुख्य उद्देश्य दिव्यांग व्यक्तियों को जनकल्याणकारी नीतियों से परिचित कराते हुए उनके अधिकार और समान अवसर को सशक्त बनाने में पूर्ण सहयोग करना है। राष्ट्रीय न्यास समिति के अन्तर्गत विविध प्रकार के कार्यक्रम संचालित किये जाते हैं जिससे कि दिव्यांग व्यक्तियों को पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सके और वह स्वयं की हीनता को दूर करते हुए सामाजिक तथा सामुदायिक आधार पर अपने सशक्तिकरण को प्रदर्शित कर सकें।

सारांश

दिव्यांग के पुनर्वास और स्थापना के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे प्रयासों के सन्दर्भ में समाजशास्त्री अध्ययन की प्रासंगिकता उनके व्यवहारिक प्रभाव तथा उसे लाभान्वितों की स्थिति को प्राप्त करना है। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत सरकार द्वारा चलाई जा रही सरकारी नीति के समावेशी पक्षों का अध्ययन किया गया है जिसमें सरकार ने दिव्यांग व्यक्तियों के पुनर्वास व्यवस्था तथा कृत्रिम अंगों तक के वितरण में पूर्ण सहयोग तथा सहायता को प्रदान किया है। साथ ही साथ उद्यमिता प्रशिक्षण और इसकी

व्यावहारिकता तथा दिव्यांगों के सन्दर्भ में किये जाने वाले समुचित प्रयासों का भी अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन सम-सामयिक परिवेश में सरकार द्वारा दिव्यांगों के प्रति किसी विषम परिस्थिति में निर्धारित नीतियों के अनुपालन के क्रम में उनका स्थापित करते हुए सामान्य नागरिकों की भांति सुविधा तथा विशेषताओं को प्रदान करने का प्रयास किया जा रहा है। सरकार यह प्रयास अपने उपक्रम संस्थाओं तथा निगम के माध्यम से संचालित कर रही है जबकि व्यावहारिक रूप में इन्हें जोड़ने के लिए सकल प्रयास किया जा रहा है। सरकार की यह कल्याण नीति सदैव इस प्रेरणा को प्राप्त करने के लिए प्रासंगिक है कि इसका संचित लाभ दिव्यांग व्यक्तियों को प्राप्त हो सके तथा वह सामाजिक और आर्थिक आधार पर राष्ट्रीय विकास में सहयोग कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :-

1. जोसेफ आर. ए. (2013) : पुनर्वास के आयाम, राम सकल पब्लिशर्स, करौंदी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी।
2. सिंह, मनोज कुमार एवं कृष्ण गोपाल (2022) : दिव्यांगों की शिक्षा का उद्देश्य, इंटरनेशनल जनरल ऑफ लिटरेसी एण्ड एजुकेशन आईएसएसएन नंबर 2789-1613 पृष्ठ संख्या 95-96 वर्ष 2022.
3. पांडे जे.एस. पी. एवं पांडे संदीप (2001) : दिव्यांगों के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों की योगदान का समाजशास्त्री अध्ययन शोध मंथन वॉल्यूम 12 नंबर 02 अप्रैल जून 2021 आई.एस.एस.एन. नंबर 0976-5255 पृष्ठ संख्या-242.
4. राय शिशिर चंद्र (2018) : दिव्यांगता की परिभाषा एवं स्वरूप श्रवण बाधिता के विशेष सन्दर्भ में इंटरनेशनल जनरल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च एण्ड इन्नोवेटिव रिसर्च स्टडीज वॉल्यूम 06 नंबर 03 मार्च 2018 पृष्ठ संख्या 136-143 मार्च 2018.
5. दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम (2016) भारत सरकार सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत।
6. निशी यादव, ममता (2025) : दिव्यांगों के प्रति समाज की अभिवृत्तियाँ एवं चुनौतियाँ एक समाजशास्त्री, विश्लेषण इंटरनेशनल जनरल ऑफ रिव्यू एण्ड रिसर्च इन सोशल साइन्स आई.एस.एस.एन. नंबर 2454-2687 वॉल्यूम 13 इश्यू 01 वर्ष 2025.
7. ब्राउन ए स्तवन (2002) व्हाट इस डिसेबिलिटी वॉल्यूम नंबर 22 नंबर 02 पृष्ठ संख्या 34-501 वर्ष 2002.
8. कल्पना डी (2008) : द डेफिनेशन पर्सपेक्ट ऑफ द डिसेबिलिटी कम्युनिटी डिजिटल कॉमन लॉ उमरी लैंड एण्ड जे.एच.सी.एल.पी. वॉल्यूम 03 अंक 03 प्रकाशित वर्ष 2008.
9. घई अनीता (2015) : डिसेबिलिटी एण्ड सोशल मूवमेंट इंडियन इंटरनेशनल सेंटर कॉरपोरेट लिमिटेड वॉल्यूम नम्बर 42 नम्बर एक पृष्ठ संख्या 12-25.

चेतना और शिक्षा के संदर्भ में स्त्री

हेमलता*

डॉ. राजीव कुमार झा**

सारांश:

साहित्य के अंतर्गत स्त्री संबंधित विषयों की चर्चा होती आ रही है। चेतना और शिक्षा के संदर्भ में शोध की दृष्टि से यह विषय प्रासंगिक होने के कारण उपयुक्त है। ऋग्वैदिक काल में स्त्री शिक्षा एवं चेतना की व्याख्या हुई है। साहित्य के विभिन्न विधाओं के माध्यम से स्त्री चेतना, शिक्षा एवं उनकी व्यथाओं के महत्व को भी रेखांकित किया जा रहा है। उन्नत सदी के आरंभ से ही स्त्री शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना, स्वतंत्रता एवं मातृसत्तात्मकता की चर्चा होने लगी। इस कार्य में कई समाजसुधारकों के योगदान की भी चर्चा की गई। भारतीय संविधान में परिवर्तन के साथ नए कानून की भी चर्चा हुई है। स्त्री के आत्मनिर्भर बनने में सशक्त महिलाओं की भी चर्चा हुई है। वर्तमान में स्त्री शिक्षा एवं सुरक्षा के संदर्भ में उनकी चेतना का कितना विकास हुआ उसकी चर्चा हुई है। अतः चेतना और शिक्षा में स्त्री से संबंधित विभिन्न विषयों पर शोध की प्रारंभिक संभावनाएं हैं यह आलेख इसी संदर्भ को विस्तार देगा।

बीजशब्द: चेतना (ज्ञान), जद्दोजहद (संघर्ष, काफी प्रयास करना), मंत्रद्रष्टा (जो मंत्रों का अर्थ जानता हो), ऋग्वेद (वैदिक संस्कृत सूक्तों का एक प्राचीन भारतीय संग्रह), वर्जित (मना/त्याग किया हुआ), सहशिक्षा (एक ही शैक्षणिक संस्थान में लड़के लड़कियों की शिक्षा), त्रिया चरित्रम (अभिनय, ढोंग या पाखंड), अवांछनीय (जिसे न चाहा जाए), स्नायविक (नाड़ी, नस संबंधित)

चेतना मनुष्य की सचेत व जागृत होने की वह स्थिति है जिसमें उसकी संवेदनशीलता निहित होती है, इसके अंतर्गत उसके विचार और भावनाएँ होती हैं। 'चेतना' के द्वारा मनुष्य अपने आस-पास के वातावरण के साथ बात-चीत, अपनी भावनाएँ एवं मानसिक परिदृश्यों की तलाश करते हैं। अन्य प्राणियों एवं वातावरण के तत्वों का बोध होने, उन्हें समझने तथा विभिन्न बातों को मूल्यांकन करने की शक्ति का नाम 'चेतना' है।

चेतना एक ज्ञानात्मक मनोवृत्ति है, जिसका संबंध जीवन दृष्टि से होता है। जीवन दृष्टि अर्थात् इतिहास, वर्तमान, अच्छा-बुरा, नया-पुराना, अनुकूल-प्रतिकूल आदि के परिस्थितिबोध और द्वंद विनिर्मित होता है। चेतना हमारे जीवन के नवीन परिवर्तन के अर्थ को स्पष्ट करती है, जिसके फलस्वरूप मानव सभ्यता-संस्कृति में बदलाव के नये आयाम जुड़ते हैं। परंतु दुर्भाग्यवश इस बदलाव से विश्व की आबादी अछूती ही नहीं वरन् अपेक्षित भी रही है।

सदियों से पक्षपातपूर्ण व्यवहार, घाव, अपने अधिकारों के प्रति चेतना, वैचारिक उथल-पुथल स्वतंत्रता बोध और विभिन्न परिस्थितियों तथा पारिवारिक, सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करने स्त्रियाँ जब घर से बाहर निकली तो नैतिक-अनैतिक, योग्य-अयोग्य, सही-गलत की मानसिक जद्दोजहद तथा स्त्रीहीनता की प्रक्षेपित अवधारणा के विरुद्ध उन्हें स्त्री-मुक्ति आंदोलन के ठोस वैचारिक धरातल का अवलम्ब मिला। घर और बाहर के वातावरण, परिस्थितियों, जीवन-शैली के फर्क ने स्त्रियों की चेतना को जागृत किया और यह बोध हुआ कि उनमें भी पुरुषों की भांति कार्य करने की प्राकृतिक शक्ति का अक्षय श्रोत है। इसी जद्दोजहद ने एक नए विमर्श को जन्म दिया जिसने सदियों से चली आ रही मानसिक तथा शारीरिक शोषण के विविध प्रतिमानों को ध्वस्त कर उन्हें प्रगतिशील स्तर पर चेतनशील बनाया।

स्त्री-चेतना के संदर्भ में मृदुला गर्ग ने यह स्पष्ट किया है कि – “जो दृष्टि नारी की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक छवि के तिलिस्म को तोड़े, वह नारी चेतना है।”¹

इस प्रकार स्त्री-चेतना का मूल धर्म इतिहास, संस्कृति और समाज द्वारा रूढ़ स्त्री छवि के तिलिस्म को तोड़ना और स्त्री-स्वतंत्रता का मानक स्थापित करना है।

स्त्री-चेतना न केवल समाज में स्त्री के दायम दर्जे के इतिहास को तोड़ने की प्रक्रिया है वरन्

* शोध छात्रा, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

** विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर हिन्दी-विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक स्तर पर परम्परागत मान्यताओं रूढ़िवादी वर्जनाओं तथा पितृसत्तात्मक सोच के प्रति विद्रोह 'चेतना' है। इसका मूल उद्देश्य व धर्म स्त्री को मानव के रूप में प्रतिष्ठित करना है।

प्रकृति के नियम अनुसार वही प्राणी जीवित रहा है जिसने अपने आस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष किया है। मानव समाज की बात की जाए तो हम पाते हैं कि सत्ता उन्हीं कौमों की रही है जिन्होंने अपने शारीरिक अथवा बुद्धिबल से शौर्य का प्रदर्शन किया है। मानव समाज स्त्री और पुरुष से संघटित होता है। यह कैसी विडंबना है कि स्त्री, पुरुष की जन्मदात्री है, उसका पालन-पोषण करती है परंतु अब तक पुरुष के अधीन रहने को मजबूर रही है। इसका मुख्य कारण यह है कि स्त्री, पुरुष की अपेक्षा शारीरिक रूप से निर्बल होती है। पुरुष को सबल बनाने का श्रेय या तो प्राकृतिक रूप से पर्यावरणीय प्रभाव को जाता है अथवा उस परिस्थिति को जिसका निर्माण समाज व कानून ने किया है। आदिम अवस्था से ही अपेक्षाकृत अधिक शक्ति वाले कार्य करने के परिणामस्वरूप पुरुष की मांसपेशियाँ मजबूत हुई और अधिक ऊर्जावान तथा बलशाली बन गया और इसी बदौलत उसने स्त्री पर वर्चस्व स्थापित किया, उसने स्त्री को पराधीन बनाए रखने हेतु अनेक ऐसे मिथकों का सृजन किया जिनका यथार्थ से कोई संबंध नहीं है। बावजूद इसके तथ्यात्मक है कि अपेक्षाकृत निर्बल होने पर भी स्त्री समाज व अर्थव्यवस्था के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है, फिर भी विचारणीय प्रश्न है कि उसे पुरुष के समान सम्मान तथा गरिमा के साथ जीने का अधिकार क्यों नहीं मिला। शायद इसलिए कि मादा जीन की भिन्नता ने स्त्री को शोषित होने के लिए मजबूर कर दिया या समाज के सत्ताधारियों द्वारा बनाए गए रूढ़िवादी नियम-कानून के तहत स्त्री सोची-समझी साजिश की शिकार हुई? इसी संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं —“नारी के प्रति हमारी सारी धारणा दो मूलभूत तत्वों से बनी है— भय और घृणा (fear and contempt)... हम उसकी क्षमता और शक्ति के प्रति इतने अधिक कन्विंस्ड हैं कि जानते हैं— खूँखार होने पर हमें खा जाएगा और पालतू हो जाने पर हमें बांध लेगा।....जब आप नारी के साथ होते हैं तो उसे केंद्र में रखकर कविताएँ रचते हैं गीत बनाते हैं, कलाओं की सृष्टि होती है और जब उससे बचकर भागते हैं तो दर्शन— शास्त्र और धर्म का निर्माण करते हैंवस्तुतः इस सारे साहित्यिक और सांस्कृतिक गरिमामय शब्द-जाल से आदमी ने और की जिस एक चीज को मारा, कुचला या पालतू बनाया है वह है उसकी स्वतंत्रता”।²

चेतना अर्थात् ज्ञान का ऐसी तर्कपूर्ण तथा विज्ञान सम्मत जानकारी से होता है जो यथार्थ से अवगत कराए तथा दृष्टिकोण को व्यापक बनाते हुए स्वतंत्र चिंतन की ओर उन्मुख करे। इसके विपरीत ऊलूजलूल जानकारी देना जो तर्क और यथार्थ से परे हो, बुद्धि-विवेक को कुंठित बनाता है और यही मानव के मानसिक विकास में बाधक बनता है। स्त्रियों के साथ कुछ ऐसा ही होता है। स्त्री को परतंत्र बनाने के लिए हर उस साजिश को धर्म, दर्शन, परंपरा और साहित्य के माध्यम से संस्कार का अमली जामा पहनाया गया, जिससे स्त्री की तेजस्विता को निषिद्ध किया जा सके।

राजेन्द्र यादव के कथनानुसार —“सामाजिक आचार संहिताओं यानी मनु और याज्ञवल्क्य स्मृतियों से लेकर व्यक्तिगत कामसूत्र तक औरत को बांधने और जीतने की कलाएं हैं। क्या यह आकस्मिक ही है कि औरत को जीतने या उसे अपना गुलाम बनाने के लिए अनगिनत वशीकरण साधनएँ, सिद्धियाँ, औषधि, आसन हैं, पौरुष और काम-संवर्धन के लिए दुनियाभर के कुश्टे और दवाईयाँ हैं। एक भी नुस्खा औरत की कामशक्ति बढ़ाने के लिए नहीं है। न उसके लिए कामसूत्र है।पुरुष ने स्त्री के खून में यह भावना संस्कार की तरह कूट-कूटकर भर दी है कि वह सिर्फ शरीर है। वह शरीर के सिवा उसकी किसी और पहचान से इंकार करता है।”³

किसी समाज के विकास को मापा जा सकता है। वैदिक काल इस दृष्टि से अनुपम था कि उस समय हमारे देश में स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान प्राप्त था और पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों की शिक्षा पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाता था। यदि वैदिक काल की बात की जाए तो यह ज्ञात होता है कि उस समय भारतीय समाज में स्त्री शिक्षा की स्थिति बेहद उन्नत अवस्था में थी और स्त्रियों में किसी प्रकार भी भेद-भाव नहीं किया जाता था। इस युग में भी स्त्रियाँ भी मन मस्तिष्क और तेजस्विनी थीं। स्त्री, वैदिक-शिक्षा के साथ-साथ यज्ञादि का संपादन करने से लेकर यज्ञोपवीत धारण करती थीं। लोपामद्रा, सूर्या, घोषा, अपाला, रोमसा, विलोमी, सावित्री, यमी, विश्वम्भरा, देवयानी ऐसे नाम हैं जो ऋग्वेद की मंत्रद्रष्टा के रूप में जानी जाती हैं।

“इस युग में लड़की और लड़के दोनों को ही अपना जीवन साथी चुनने की पूर्ण स्वतंत्रता थी। ज्ञान के पठन-पाठन के लिए ब्रह्मवादिनी युवतियों को आजन्म कुमारी रहने की भी अनुमति थी। बालविवाह की प्रथा

नहीं थी। ऋग्वैदिक काल में यद्यपि परिवार पितृसत्तात्मक था और बहुपत्नी प्रथा का उल्लेख भी मिलता है, पर विधवाओं के पुनर्विवाह पर नियोग को भी अधिकार था। सामाजिक और धार्मिक सभाओं में उनका प्रमुख स्थान था।⁴

स्त्री को न केवल शिक्षा से वंचित किया, बल्कि उसके जीवन जीने के फैसले तक का अधिकार पुरुषों द्वारा लिया जाने लगा। आदिमयुग से आधुनिक युग के वैज्ञानिक समाज तक का लम्बा सफर स्त्री-चेतनाकी दृष्टि से ऊबड़-खाबड़, संघर्षमय और विडम्बनापूर्ण रहा है।

ऋग्वेद के बाद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद लिखे गए इसके उपरांत सूत्र, उपनिषद अरण्यक व पुराणों अध्ययन के आधार पर इतिहासकारों ने वैदिक युग को स्त्रियों की सामाजिक व शैक्षणिक स्थिति के संदर्भ में स्वर्ण युग की संज्ञा दी। बौद्धकाल की बात की जाए तो इस काल में स्त्रियों की शिक्षा पुरुषों की शिक्षा से उन्नत नहीं थी क्योंकि आरंभ में संघ में स्त्रियों का प्रवेश वर्जित था परंतु बाद में इन्हें प्रवेश दे दिया गया जिन स्त्रियों ने संघ में प्रवेश किया उसे भिक्षुणी से संबोधित किया गया। इस संघ में प्रवेश लेने वाली स्त्रियाँ कुलीन और अभिजात्य वर्ग की थीं जिससे इनको शिक्षा को प्रोत्साहन तो मिला परंतु समाज के अन्य वर्ग की महिलाएं शिक्षा से वंचित रह गईं। मुगलशासन के दौरान शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रयास नहीं किए यह केवल पुरुषों की शिक्षा तक ही सीमित था। इसकाल में स्त्रियों की शिक्षा की कोई पुख्ता व्यवस्था नहीं थी। मुसलमानों में वे ही महिलाएं शिक्षित हुआ करती थीं जो कुलीन और राजघरानों से संबद्ध होती थी।

“मालवा के शासक महमूद खिलजी के पुत्र ग्यासुद्दीन खिलजी ने सांरगपुर में एक मदरसा स्थापित किया था जिसमें बालिकाओं को कला और शिल्प की शिक्षा दी जाती थी। फरिश्ता के मुताबिक उस मदरसे में स्त्रियों के लिए नृत्य, संगीत, सिलाई बुनाई, कढ़ाई, मखमल बनाने और बढ़ई, लुहार, सुनार, मोची आदि के कार्य सिखाए जाते थे। इसके अतिरिक्त वहां युद्धकला की शिक्षा भी दी जाती थी।”⁵

मुसलमान महिलाओं में शिक्षित हुमायूँ की बहन गुलबदन बेगम का नाम आता है जिसने ‘हुमायूँनामा’ एक ऐतिहासिक ग्रंथ लिखा। इनके अलावे सलीम सुल्तान माहमअंग, नूरजहां, चांद सुल्ताना और मुमताज महल जैसी विदुषी महिलाएँ थीं तो शाहजहाँ बेगम अपने समय की प्रसिद्ध कवयित्री थीं।

अतः कहा जा सकता है कि मुस्लिम युग में शिक्षा-प्रणाली में लचीलेपन का अभाव था। 19वीं उन्नीसवीं सदी के आरंभ होते ही देश पर अंग्रेजों का आधिपत्य कायम हो गया। परिणामतः अंग्रेजों द्वारा प्रचलित देशी शिक्षा-व्यवस्था की जांच की गयी। जिसमें पाया गया कि स्त्री-शिक्षा की व्यवस्था अच्छी नहीं थी। सन् 1850 ई. में सर लिटलर ने स्त्री-शिक्षा के संदर्भ में लिखा—“भारत में स्त्री-शिक्षा अच्छी दृष्टि से नहीं देखी जाती है और हिंदू व मुसलमान दोनों ही इससे आशंकित रहते हैं। क्या यह तटस्थता के सिद्धांत को आघात नहीं पहुँचाएगा, जिसके प्रतिपालन के लिए सरकार प्रतिबद्ध है।”⁶

उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से ही स्त्रियों के लिए स्कूल खोले जाने थे। सन् 1820 ई. में बंगाल में कन्या स्कूलों की स्थापना की गई, सन् 1824 ई. में ‘लेडिज सोसाइटी फॉर नेटिव फीमेल एजुकेशन’ कलकत्ता में ही 1828 ई. में सेंट्रल गर्ल्स स्कूल। इस समय विदेशी महिला मिसेज विल्सन, एनीबसेंट, प्रो. पैहन एलफिंसटन आदि का नाम उल्लेखनीय है उन्होंने तत्कालीन स्त्री-शिक्षा पर ऐतिहासिक कार्य किया। भारत की यदि बात की जाय तो बालिका शिक्षा के उत्थान के लिए अनेक विद्वानों तथा राजा राममोहन राय, महात्मा ज्योतिबा फूले जगन्नाथ शंकरसेत आदि के नाम उल्लेखनीय हैं इन्होंने अपने कार्यों से सिद्ध किया है कि स्त्री-शिक्षा शास्त्र-सम्मत है। राजा राममोहन राय के द्वारा स्थापित ‘ब्रह्मसमाज’ ने स्त्री-शिक्षा के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

दलित स्त्रियों की शिक्षा की बात की जाय तो महात्मा ज्योतिबा फूले और उनकी पत्नी सावित्रीबाई फूले के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। ज्योतिबा फूले के सहयोग व सावित्रीबाई फूले के साहस से ही वे भारत के पहले बालिका विद्यालय की पहली प्रधानाध्यापिका और पहले किसान स्कूल की संस्थापिका थीं। स्त्री-शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए इस दिशा में कई योजनाओं व अधिकारों को निर्मित किया गया।

- प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की बालिकाओं के लिए श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख समिति 1968 ई.
- श्रीमती हंसा मेहता समिति— यह राष्ट्रीय स्त्री-शिक्षा परिषद के सभी स्तरों पर लड़कियों के पाठ्यक्रम की समस्या व सहशिक्षा एवं स्त्रियों की समानता के अवसर।
- भक्त वत्सलम् समिति सन् 1959— स्कूल स्तर पर लड़कियों और प्रौढ़ स्त्रियों की शिक्षा के संबंध में सरकार को सलाह देना।
- जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम

- कस्तूरबा गांधी स्वतंत्रता विद्यालय योजना 2004 ई.
- शिक्षा गारंटी योजना और वैकल्पिक एवं प्रयोगात्मक शिक्षा

"1 अप्रैल 2010 को भारतीय शिक्षा के इतिहास में एक स्वर्णिम दिन के रूप में हमेशा याद किया जाएगा क्योंकि इसी दिन से समूचे भारत में शिक्षा का अधिकार अधिनियम लागू हो गया, संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा के अधिकार को अनुच्छेद-21 में जोड़ा गया है जिस कारण इसे मौलिक अधिकार के समान महत्व मिल गया। इस कानून के अनुसार प्रत्येक बच्चे को प्राइमरी तक मुफ्त शिक्षा देने की जिम्मेदारी सरकार की होगी।"⁷

वर्तमान में हम देखते हैं कि स्त्रियों के हित व अधिकार चाहें वह शिक्षा का अधिकार हो या सुरक्षा का अधिकार संविधान व सरकार की ओर से बनाए गए सभी नियामक धरे रह गए हैं। ऐसा इसलिए कि स्त्रियों के चरित्र का निर्माण ही 'त्रिया चरित्रम पुरुषस्य भाग्य, देवो न जानत कुतो मनुष्यः।' (मनु) के आधार पर कर दिया गया है। हमारे पौराणिक ग्रंथों में भी स्त्रियों को दोगुने दर्जे पर रख उनके आस्तित्व का निर्माण आधार बनाया गया। यह पुरुष की मानसिक रूढ़िवादी पौरुषत्व को ही दर्शाता है। पुरुष इतना स्वार्थी है कि जब तक उसे स्त्री की जरूरत रही, चाहे वह दूध पिलाने वाली या थपकी देने वाली माँ अथवा उसकी कामेच्छा शांत करने वाली रमणी या प्रेयसी हो, तब तक पुरुष उसे कभी देवी, कभी वात्सल्य, प्रेम और करुणा की प्रतिमूर्ति, कभी अप्सरा या कामिनी के विशेषणों से अलंकृत करता रहा और जब उसकी स्वार्थपूर्ति हो गई तब पुरुष ने उसे डायन, चुड़ैल, जादूगरनी, चरित्रहीन या रहस्यमयी स्त्री बना दिया। ये सभी कृत्य कहीं न कहीं पुरुष की सोची समझी साजिश का ही परिणाम है।

इस संदर्भ में मस्तराम कपूर ने उल्लेख किया है "जब चाहा उसका दूध पिया और जब चाहा उसका भोग किया तथा जब चाहा उसे मारा-पीटा और हत्या कर दी। सार यही है कि उसे मानवीय अधिकारों से वंचित कर गाय-भेड़ बनाए रखने की कोशिश की, उसका शिक्षा का अधिकार छीना, सम्पत्ति का अधिकार छीना। उसे अपनी बात कहने का मौका नहीं दिया, अपनी इच्छानुसार जीने का आधार नहीं दिया।"⁸

भारतीय स्त्री का जहाँ तक प्रश्न है, स्वतंत्रता के पूर्व से प्रारंभ हुए स्त्रीवादी आंदोलनों जिनमें स्त्री विरोधी कुरीतियों के प्रति आक्रोश था जिसके फलस्वरूप समाज में चेतना जागृत हुई परंतु वास्तविक रूप से स्त्रियों को पुरुष के बराबर लाने तथा अनेक क्षेत्रों में स्वतंत्रता तथा समाधान का अधिकार भारतीय संविधान के द्वारा प्राप्त हुआ। भारतीय संवैधानिक परिवर्तन के अनुसार प्रत्येक स्त्री को लिंग के आधार पर भेदभाव समाप्त करके उन्हें समानता का अधिकार मिला, उन्हें अपना व्यवसाय चुनने के लिए स्वतंत्रता मिली, घूमने-फिरने, वेश-भूषा पहनने व रहने की आजादी मिली। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए दरवाजे खुल गए। परिणामतः स्त्री की सोच में परिवर्तन हुआ तथा आत्मनिर्भर बनने व समाज में आत्मसम्मान की जीजिविषा उत्पन्न हुई। वर्तमान में भारतीय स्त्रियों ने विभिन्न क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित किए हैं यथा-कुशल राजनीतिज्ञ, वैज्ञानिक, उद्योगपति, खिलाड़ी, प्रशासनिक अधिकारी तथा साहित्यकार बन समाज के भीड़ में अपनी नई पहचान बनाई है। सरोजनी नायडू, इंदिरा गांधी, कल्पना चावला, किरण बेदी, बछेन्द्रीपाल, साइना नेहवाल, मेरीकॉम, साक्षी मलिक, वर्तमान राष्ट्रपति द्रौपदी मूर्मू, सौंदर्य के क्षेत्र में सुस्मिता सेन, रीता फारिया आदि आर्थिक रूप से स्वावलंबी हैं।

बावजूद इसके भारतीय स्त्री आज विरोधाभास के बीच जी रही है। स्त्री आज अपनी मेधा का उपयोग भले ही विभिन्न क्षेत्र में कर रही हैं आर्थिक रूप से सुदृढ़ हो रही हैं परंतु यांत्रिक युग में स्त्री की शारीरिक शक्ति गौण हो चुकी है। वर्तमान भारतीय स्त्री में विभिन्न सामाजिक धार्मिक बंधन तोड़ने की आकांक्षा तो रखती है परन्तु अब भी पति को सर्वोपरी मानती हैं, उसका संरक्षण उसके लिए आज भी जरूरी है। उसका चिंतन आज भी घर-गृहस्थी, परिवार तथा समाज तक सीमित है।

शिक्षा के प्रसार के बावजूद स्त्रियाँ आज भी पुरुष के शारीरिक, मानसिक उत्पीड़न तथा यौन-शोषण को झेलने के लिए विवश है। दहेज प्रथा तथा बलात्कार जैसी समस्याएँ आज भी बनी हुई हैं।

मंजू सुमन के अनुसार- "बलात्कार के ऐसे घृणित दुष्कर्मों के लिए स्त्री भी कम दोषी नहीं है। स्त्रियाँ पैसों के लिए विज्ञापन में बिकती हैं और दूसरी महिलाओं को भी बेचती हैं। परीक्षा में सफल होने, नौकरी पाने या तरक्की की लालसा में वह गलत समझौते कर लेती हैं। नारी कहीं बहु, सास, पत्नी, प्रेयसी, सहकर्मी की भूमिका निभाते हुए अपनी बहनों को बाहरी दरिन्दों के हाथों सौंप देती हैं।"⁹

उपर्युक्त कथन आज के परिवेश की सत्यता को उद्घेलित करता है। वर्तमान में भले ही स्त्रियाँ प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं परंतु आज भी वे सुरक्षित नहीं हैं। विगत कुछ वर्षों में देश में स्त्रियों के साथ बलात्कार के

बाद उनकी हत्या कर देने जैसी घटनाएँ थमने का नाम नहीं ले रही हैं। 16 (सोलह) दिसम्बर 2012 को घटित निर्भया कांड ने सात वर्षों तक पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। 4 (चार) मई 2023 को घटित मणिपुर में दलित महिलाओं के साथ कुकृत्य (सड़क पर नगनावस्था) किया गया और अभी 10 अगस्त 2024 कोलकाता में मौमिता देवनाथ के साथ शिक्षित वर्ग के लोगों ने ही बलात्कार व हत्या का अंजाम दिया। इस तरह की घृणित व हृदयविदारक घटना यह साबित करती है कि आज भी हमारे देश की बेटियाँ, बहनें, माताएँ सुरक्षित नहीं हैं। शैक्षणिक परिवेश का विस्तार होने के बावजूद चेतना के विस्तार में व्यापकता नहीं आयी है। ऐसी घटनाओं का जिम्मेवार कहीं न कहीं पाश्चात्य व आधुनिक सभ्यता का रंग-ढंग है।

नए परिधान, मोबाइल, लैपटॉप यांत्रिकी वस्तुओं का उपयोग भले ही हो रहा हो परंतु स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। भागमभाग की जिन्दगी में स्त्री-पुरुष का जीवन उबाऊ हो चुका है। वे स्वयं को यांत्रिकी परिवेश के अंतर्गत आत्मकेन्द्रित कर चुके हैं। परिणामतः मानसिक कुंठा, स्नायविक रोग, अवसाद, असुरक्षा की भावना से जूझ रहे हैं बलात्कार, हत्या और आत्महत्या जैसी अवांछनीय कर्मों को बढ़ावा दे रहे हैं।

निष्कर्षतः वर्तमान में स्त्री अपने आत्मसम्मान को लेकर सजग हो रही है, वे समाज में प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त करने हेतु शिक्षा के द्वारा अपनी चेतना का विकास किया है परंतु आदर्श-समाज के निर्माण के लिए समाज के स्त्री-पुरुष दोनों में चेतना एवं शिक्षा के साथ-साथ नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक चीजों में वांछित परिवर्तन की आवश्यकता है इसके बगैर न तो नई चेतना, शिक्षा का निर्माण होगा और ना ही नई स्त्री का आविर्भाव होगा।

संदर्भ सूची

1. सिंह सुधा, चतुर्वेदी जगदीश्वर : संपादक, स्त्री अस्मिता: साहित्य और विचारधारा, आनंद प्रकाशन सं 2004, पृष्ठ- 206
2. जैन अरविन्द, औरत होने की सजा, राजकमल प्रकाशन दूसरी आकृति-1999 पृष्ठ-10-11
3. वहीं, पृष्ठ. 12-13
4. सरोज रामचंद्र, हिंदू वर्ण व्यवस्था में स्त्री, पहल, 86 सं. ज्ञानरंजन, पृष्ठ-133
5. त्रिपाठी डॉ. अपर्णा, त्रिपाठी डॉ. रेणु, स्त्री शिक्षा एक मूल्यांकन, खुशी पब्लिकेशन्स सी-145 गोविन्दपुरम, संस्करण: प्रथम 2012 पृष्ठ सं.- 36-37
6. वहीं पृष्ठ सं.- 41
7. वहीं पृष्ठ सं.- 196
8. किशोर राज, स्त्री परम्परा और आधुनिकता, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ सं.- 22-23
9. सुमन मंजू, दलित महिलाएँ, सम्यक प्रकाशन पृष्ठ सं.-44

भारत में दलित साहित्य और दलित आन्दोलन

अजय कुमार*
संजय श्रीवास्तव**

प्रस्तावना

भारत के इतिहास में दलित एक ऐसा साहित्य है जो क्षेत्र और भाषाओं की सीमाओं को लांघकर एक संवेदना का बोध करता है। आधुनिक काल की यह एक ऐसी घटना है जिसने साहित्य के मायने को अर्धांतरित कर दिया है। इसी क्रम में यह एक राष्ट्रीय आंदोलन है जो सामाजिक और राजनीतिक आन्दोलनों के समानान्तर चल रहा है। आधुनिकता के जिस नवजागरण की बात साहित्य के अन्तर्गत की जाती है उसका राष्ट्रीय स्वरूप बन नहीं सका था। क्योंकि हर क्षेत्र और भाषा का नवजागरण अलग-अलग था। हिन्दी भाषा के विशालकाय भू-भाग में पनप रही दलित रचनाएं भाषा का राष्ट्रीयकरण कर रही हैं। अद्विदी क्षेत्र की रचनाएं हिन्दी में अनुवादित होकर भाषा की नवीन सर्जना कर रही हैं। दलित लेखन सूझ-बूझ के साथ विकसित की गई असमान हिन्दू संस्कृति और परंपरा के बरक्स आंदोलन धर्मी तेवर के साथ अग्रसर है। हिन्दू धर्म की वर्णाश्रम व्यवस्था पुर्नजन्म और कर्मफल की कहानी पर टिकी हुई है। पूर्व जन्म में किए गये अच्छे कर्म ऊँची जाति में तथा गन्दे कर्म नीची जाति में जन्म का आधार हैं; अर्थात् जाति भगवान की देन है। दलितों को लिए निर्विकार भाव से सेवा करना आवश्यक बना दिया गया था जो उनकी मुक्ति का मार्ग माना जाता रहा है। जो आज भी कही न कही अवचेतन में गुलामी का पर्याय बना हुआ है। दलित साहित्य इस मानसिक गुलामी की सोच को बेनकाब करती है। भारतीय समाज में व्याप्त भेद भाव की क्रूर प्रणाली ने धार्मिक भगवा चोंगा पहन कर ब्राह्मणवाद का रूप धारण किया, जिसने धार्मिक कर्मकाण्ड, अंधविश्वास और ऊँच-नीच की भावना को वैधता प्रदान किया है। आज भी तमाम नियमों, कानूनों के बावजूद यह परम्परागत रूप से भयानक रूप से भारतीय समाज में व्याप्त है। जिसके फलस्वरूप मुक्तभोगी समाज इस अमानवीय व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़ा है।

हिन्दू समाज की अधिकांश मान्यताएं दलितों के विरोध में दिखाई पड़ती हैं। समाज में अनेक ऐसी कहावतें और लोकोक्तियाँ हैं जो दलित समाज के प्रति घृणा और अपमान का भाव जागृत करती हैं। अक्सर ही कई लोगों से बात करते हुए यह सुनने को मिलता है कि "क्या तुम मुझे चोर-चमार समझे हो क्या"। और कहावत है कि "कोदो सवा अन्न नहीं, डोम चमार जन नहीं"। दैनिक जीवन में ऐसे अनेक मुहावरों की भण्डार है। इस लोक कलाओं तथा संकीर्ण मानसिकता को उजागर करते हुए डा० तुलसी राम लिखते हैं कि "साहित्य कलाओं को इस वर्ण व्यवस्था से ग्रसीत समाज में कुछ जाति-विशेष से जोड़कर उनका उपहास करते हुए प्रायः उन्हें कला या साहित्य क्षेत्र से दूर रखने का निरन्तर प्रयास किया जाता रहा है। जैसे उत्तर प्रदेश के कुछ नृत्यों को चमार से चमरउवा, कहार से कहरउवा, धोबी से धोविअउवा, आदि शब्द से कहकर न सिर्फ उन्हें उपेक्षित करते हैं बल्कि असंस्कृति भी समझा जाता है। ये सारी परम्परा भरतमुनि के नाट्यशास्त्र से जुड़ी हुई हैं। इन सब मान्यताओं में दलित के प्रति जो अपमान तिरस्कार और घृणा का भाव है उसकी अभिव्यक्ति दलितों के नामकरण में भी परिलक्षित होती है।

दलित का आशय—डॉ० भीम राव अम्बेडकर जी का निष्कर्ष था कि भारतीय समाज का ताना बाना अभी जाति व्यवस्था पर आधारित है और भारतीय समाज के अनेक स्तरों में परिवर्तन का निर्धारण भी जाति के आधार पर होता है। प्रत्येक व्यक्ति जिस जाति में या धर्म में जन्म लेता है वह उस जाति या धर्म में होकर रह जाता है। यह स्थिति माँ के गर्भ से लेकर मृत्यु तक रहती है। उनका स्पष्ट मानना था कि जाति-व्यवस्था सम्पूर्ण भारत देश के विकास में अवरोधक है। इसका विनाश सभी के लिए हितकर है।

डा० श्यामराज सिंह, दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि "दलित वह है जिसे भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है"। कवल भारती का कहना है कि "दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे गन्दे और कठिन कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है।

* शोध छात्र, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

** प्रोफेसर, मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

जिसे शिक्षा ग्रहण और व्यवसाय करने से मना किया गया और सछूतों ने सामाजिक बाहिष्कार की नियम लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अन्तर्गत वही जातिया आती है, जिसे अनुसूचित जाति कहाँ जाता है।”

डॉ० भीम राव अम्बेडकर को दलित आन्दोलन का प्रेरक मानते हुए दलित साहित्यकार डा० गंगाधर मानतावणे दलित शब्द की व्याख्या करते हैं, दलित क्या है ? दलित कोई जाति नहीं बल्कि परिवर्तन और क्रान्ति का प्रतीक है। दलित मानवतावाद में विश्वास करता है, लेकिन वह ईश्वर के अस्तित्व, पुनर्जन्म, आत्मा तथा उन तथाकथित धार्मिक ग्रन्थों को अस्वीकार है, जो भेदभाव की शिक्षा देता है। वह भाग्य तथा स्वर्ग की अवधारणाओं को भी अस्वीकार करता है, क्योंकि ये ही विचार उसको दासत्व का बोध कराते हैं।

दलित आन्दोलन— भारतीय समाज में दलित आन्दोलन एक संप्रदाय और अल्पसंख्यकों की आवाज बनाए रखने के लिए उच्च वर्ग के लोगों और उनके ब्रह्मवदी सम्प्रदाय के निम्न जाति के लोगों की विचारधारा द्वारा एक सामूहिक कार्यवाही की जाती है। दलित आन्दोलन एक सामाजिक रूप से आधारित आन्दोलन था जिसका उद्देश्य पुरानी विचारधारा से प्रभावित भारतीय संस्कृति स्वतंत्रता, समान व्यवहार सामाजिक न्याय आदि के लोकतान्त्रिक दृष्टिकोण से अपनाया गया था।

यह आन्दोलन सबसे पहले 1970 में शुरू हुआ और गंभीर रूप से पकड़ में आ गया। दलित आन्दोलन की नींव भारत की उच्च पदवी के कलाकारों की कृतियों के कारण उनके स्मारकों में स्थापित मठ में टूटे हुए की उपज है। आदिवासियों को उच्च मानसिक प्रशिक्षण के साथ प्राथमिकता दी गयी और उन्हें सामाजिक आर्थिक और राजनितिक पूर्वाग्रहों से रखा गया क्योंकि उन्हें अन्य तीन वर्गों, तथा सभी गैर दलित की सेवा करने का कर्तव्य दिया गया था।

पश्चिमी भारत में दलित आन्दोलन— पश्चिमी भारत में दलित आन्दोलन के पहले कुछ धार्मिक आन्दोलन की प्रारम्भ हो गये थे। महाराष्ट्र में धार्मिक सुधार आन्दोलन 1840 ई० से प्रारम्भ हुआ। भारत में निम्न जाति आन्दोलन के रूप में किए गये प्रयास भारत में निम्न जाति की स्थिति में सुधार के लिए प्रारम्भिक प्रयास महाराष्ट्र में ज्योतिबा फूले के नेतृत्व में किया गया। पश्चिमी भारत में ज्योतिबाफूले (1827–90) ने निम्न जातियों के लिए संघर्ष किया।

गांधी और दलित आन्दोलन— 1920 में गांधी ने पहली बार कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन में अस्पृश्यता के अभिशाप से मुक्त करने की अपील की। उन्होंने अछूतों के कल्याण के लिए एक अभियान चलाया, जिसे ऊँची जाति के हिन्दुओं से ज्यादा समर्थन नहीं मिला, बाद में उन्होंने अछूतों को संदर्भित करने के लिए हरिजन शब्द का इस्तेमाल किया। उन्होंने अस्पृश्यता की प्रथा के माध्यम से दलितों के साथ होने वाले अन्याय की गम्भीरता का एहसास करने के लिए उच्च जाति के हिन्दूओं को लगातार प्रयास किया।

निष्कर्ष— भारत में सदियों से अनुसूचित जाति और जन जातियों को सामाजिक और आर्थिक बाहिष्कार का सामना करना पड़ा है। इस सामाजिक रीतियों को दूर करने के लिए ही भारतीय संविधान के अनुच्छेद 17 में अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया गया और इसे कानून के अनुसार दण्डनीय अपराध बना दिया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- हिन्द एराइज (2023). दलित आन्दोलन
- तुलसी राम (2021). दलित साहित्य की अवधारणा. उद्धृत चिंतन की परम्परा और दलित साहित्य
- डॉ० अम्बेडकर वाडमय खण्ड 9 पृष्ठ 22–23
- डॉ० चंद कुमार वरुणे (1997). दलित साहित्य, रचना प्रकाशन जयपुर, पृ०57
- चतुर्वेदी जी (1985) दलित शिक्षा, RBSA प्रकाशन, जयपुर
- डेकार्ड वी०एस० (1979) दलित आन्दोलन, हार्पर और रो न्यूयार्क
- अम्बेडकर वी०आर० (1946) शूद्र कौथ थे : बाम्बे

उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर पर प्रभाव

अज़ीमा खुशनूदी*

सार:

मेरा यह पेपर " उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर पर प्रभावों का एक अध्ययन है। उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति उनके सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति केवल परिवार की आय और शिक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें संसाधनों की उपलब्धता, पारिवारिक दृष्टिकोण और सामाजिक समर्थन भी शामिल हैं। सृजनात्मकता बच्चों की नवाचारी सोच, समस्या समाधान और कल्पनाशीलता को मापती है, जबकि बुद्धि स्तर उनकी तार्किक क्षमता, विश्लेषण और निर्णय लेने की क्षमता को दर्शाता है। इस अध्ययन का उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि छात्रों की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि उनके सृजनात्मक और बुद्धि विकास को किस हद तक प्रभावित करती है। अध्ययन में 160 उच्च माध्यमिक छात्रों का चयन किया गया, जिसमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्र दोनों शामिल हैं। परिशिष्ट साक्षात्कार सूची, जनरल इंटेलिजेंस टेस्ट मोहसिन (1968, बौद्धिक विकास) एवं सृजनात्मक चिंतन डॉ० बाकर मेहंदी (1978) शाब्दिक को उपयोग में लाकर बालकों के समग्र विकास पर अध्ययन किया गया। परिणामों से स्पष्ट हुआ कि उच्च सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों में सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर अधिक विकसित होता है। शहरी छात्रों में ग्रामीण छात्रों की तुलना में अधिक सृजनात्मकता और बुद्धि विकास पाया गया। यह अध्ययन शिक्षा नीति निर्धारण, पाठ्यक्रम विकास और शिक्षण रणनीतियों के सुधार के लिए महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है। साथ ही, यह सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और संज्ञानात्मक क्षमताओं के बीच संबंध को समझने में भी योगदान देता है।

विशिष्ट शब्द: जैविक विकास, संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक-भावनात्मक विकास, सृजनात्मकता, बुद्धिमत्ता, एवं बालक।

उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति उनके व्यक्तित्व, सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालती है। शिक्षा और सामाजिक-आर्थिक परिप्रेक्ष्य में बच्चों के संपूर्ण विकास का अध्ययन करना अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह न केवल उनके शैक्षणिक परिणामों को प्रभावित करता है, बल्कि उनके व्यक्तिगत विकास, सामाजिक व्यवहार और भविष्य में निर्णय लेने की क्षमताओं को भी आकार देता है। सामाजिक-आर्थिक स्थिति का अर्थ केवल परिवार की आय, रोजगार या शिक्षा स्तर तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें परिवार की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, संसाधनों की उपलब्धता, सामाजिक समर्थन, आवास की स्थिति और बच्चों की शिक्षा के प्रति पारिवारिक दृष्टिकोण भी शामिल होते हैं।

सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर, दोनों ही बच्चों के संज्ञानात्मक और व्यक्तित्व विकास के महत्वपूर्ण पहलू हैं। सृजनात्मकता बच्चों की समस्याओं को नवाचारी ढंग से हल करने, नए विचार उत्पन्न करने और अपनी कल्पनाओं को वास्तविकता में रूपांतरित करने की क्षमता को दर्शाती है। वहीं, बुद्धि स्तर बच्चों की तार्किक क्षमता, सीखने की गति, विश्लेषण और निर्णय लेने की क्षमता का मापक होता है। उच्च माध्यमिक स्तर पर, जब बच्चे किशोरावस्था में प्रवेश कर चुके होते हैं, उनकी सोच अधिक जटिल, विश्लेषणात्मक और आत्म-निर्णयात्मक हो जाती है। इस अवस्था में, उनके सामाजिक-आर्थिक परिवेश का प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण हो जाता है।

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य यह निर्धारित करना है कि छात्रों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति उनके सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर को किस प्रकार प्रभावित करती है। इसके लिए यह अध्ययन उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों के सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि और उनके संज्ञानात्मक, सृजनात्मक तथा शैक्षणिक विकास के

* शोधार्थी (मनोविज्ञान विभाग), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, मोबाइल नं.: -8804702132

Email: azimakhushnoodi@gmail.com

26 उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर पर प्रभाव

बीच संबंधों को समझने का प्रयास करता है। अध्ययन में तीन प्रमुख आयामों पर ध्यान केंद्रित किया गया है—सामाजिक-आर्थिक स्थिति, सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर।

सामाजिक-आर्थिक स्थिति के अंतर्गत परिवार की आर्थिक स्थिति, माता-पिता की शिक्षा, पारिवारिक संरचना, माता-पिता की पेशेवर पृष्ठभूमि, बच्चों की शिक्षा के लिए उपलब्ध संसाधन और सामाजिक समर्थन प्रणाली का मूल्यांकन किया गया। सृजनात्मकता का मापन मानक सृजनात्मकता परीक्षणों के माध्यम से किया गया, जिसमें बच्चों की समस्याओं को हल करने की क्षमता, नवीन विचारों की उत्पत्ति और उनके प्रयोगात्मक दृष्टिकोण का आकलन शामिल था। बुद्धि स्तर का मूल्यांकन मानक बुद्धि परीक्षणों के माध्यम से किया गया, जिसमें तार्किक सोच, समस्या समाधान, निर्णय लेने की क्षमता और संज्ञानात्मक कौशल को मापा गया।

बुद्धि स्तर: बुद्धि को मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु के अनुपात से ज्ञात किया जाता है तथा इसको एक अंक में प्रस्तुत किया जाता है। बुद्धिमापन की प्रक्रिया में मानसिक आयु का विचार सर्वप्रथम बिने ने प्रस्तुत किया। मानसिक आयु व्यक्ति के विकास की वह अभिव्यक्ति है जो उसके उन कार्यों द्वारा ज्ञात की जा सकती है जिनकी उसकी आयु विशेष में अपेक्षा है। इस तरह किसी व्यक्ति की मानसिक आयु से हमारा आशय उस आयु से है जिस आयु के प्रश्नों या समस्याओं को वह हल कर लेता है। अर्थात् व्यक्ति जितनी आयु स्तर के प्रश्नों या समस्याओं को हल कर लेता है, उसकी मानसिक आयु भी उतनी ही होगी। बुद्धि परीक्षणों से व्यक्ति की मानसिक आयु को ज्ञात किया जाता है। शारीरिक आयु का अभिप्राय व्यक्ति की वास्तविक आयु से अर्थात् उसकी जन्म तिथि से वर्तमान समयावधि तक की आयु है। बुद्धि-लब्धि प्रतिभा का सूचकांक है। प्रतिभा की यह मात्रा या मानसिक अभिवृद्धि है।

बाल्यावस्था से किशोरावस्था तक बुद्धि में वृद्धि होती रहती है। इस अवस्था तक बुद्धि स्थिर नहीं रहती। परन्तु बाद में एक अवस्था ऐसी आती है जब बुद्धि स्थिर हो जाती है। बुद्धि स्तर को निम्न सूत्र द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

बुद्धि स्तर प्राप्त करने के लिए पहले बुद्धि परीक्षण से मानसिक आयु ज्ञात की जाती है; तथा फिर उसमें व्यक्ति की वास्तविक आयु का भाग दे दिया जाता है, तथा संख्या को पूर्ण बनाने के लिए इस अनुपात को 100 से गुणा कर दिया जाता है। मानसिक आयु $\times 100 =$ वास्तविक आयु।

सृजनात्मकता:— सृजनात्मकता बालकों में निहित विशिष्ट गुण है। इस गुण को विद्यार्थियों में बढ़ाना आवश्यक है। शिक्षक को इस बात से परिचित होना चाहिये कि सृजनशील बालक स्वतंत्र निर्णय शक्ति वाले होते हैं, साथ ही बालक अपनी बात पर दृढ़ होते हैं, वे जटिल समस्याओं के समाधान में रुचि लेते हैं। वे उच्च स्तर की प्रतिक्रिया करते हैं। शिक्षक का कक्षा में पढ़ाने के दौरान सर्जनात्मकता के विकास की ओर ध्यान देना चाहिये। पाठ्यक्रम में भी सृजनात्मकता को स्थान दिया जाना चाहिये। बालक की अभिव्यक्ति का माध्यम खेलकूद हो सकता है। जिमनास्टिक का अभ्यास, नृत्यकला की आधारशिला बन सकता है। यहाँ पर शिक्षक की भूमिका ऐसी होनी चाहिए कि वह विद्यार्थी को उसकी सृजनात्मकता की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति हेतु उपयुक्त माध्यम ढूँढ़ने में समुचित मार्गदर्शन प्रदान करे।

सृजनात्मकता, बुद्धि से एक भिन्न योग्यता से है, फिर भी यह देखने में आया है कि जो बच्चे सृजनात्मक चिन्तन रखते हैं, वे बुद्धि की दृष्टि से भी प्रतिभाशाली छात्रों की श्रेणी में आते हैं। साथ ही यह भी देखा गया है कि माता-पिता का व्यवहार, बच्चों की सृजनात्मकता को किसी सीमा तक प्रभावित कर सकता है। टेलर अनुसार सृजनात्मकता, आविष्कारात्मक सृजनात्मकता, नवाचारित सृजनात्मकता, अभिव्यक्तात्मक सृजनशीलता, उत्पादक सृजनात्मकता और आपातित सृजनशीलता बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है।

सृजनात्मक बालक हेतु परीक्षण: सृजनात्मकता की पहचान के लिए निरन्तरता, लोचनीयता मौलिकता तथा विस्तार का मापन एवं परीक्षण किया जाता है। अतः सृजनात्मकता व्यक्ति की मानसिक योग्यता, चेतना शक्ति तथा जिज्ञासा से सम्बद्ध योग्यता है, जिसके द्वारा नए विशिष्ट विचारों या तथ्यों की खोज की जाती है। इसके लिए चित्रपूर्ण परीक्षण, उत्पाद सुधार कार्य, वृत्त परीक्षण, एवं टीन के खाली डिब्बों से नवीन वस्तुओं का सृजन कराया जाता है।

बच्चों में सृजनात्मकता का विकास हेतु शिक्षक को चाहिए कि अधिगम के समय तथ्यों को समस्या को हल करने में कौन-कौन-से तथ्यों को सिखाया जाए, शिक्षक को मौलिकता, मूल्यांकन, समस्या एवं जाँच स्तरों की का ध्यान रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त पाठ्य-सहगामी क्रियाएँ जैसे विद्यालय में बुलेटिन बोर्ड, मैगजीन, पुस्तकालय, वाद-विवाद, खेल-कूद, स्काउटिंग, एनसीसी आदि क्रियाओं द्वारा नवीन उद्भावनाओं का विकास करना चाहिए।

प्रो० हुमायूँ कबीर (2004), 'माध्यमिक शिक्षा, शिक्षा की एक ऐसी कड़ी है जो प्राथमिक व उच्च शिक्षा को एक दृढ़ता के साथ एक कड़ी में बाँधती है। क्रो० एवं क्रो० एवं टरमैन के शब्दों में बुद्धि-लब्धि प्रतिभा का सूचकांक है। प्रतिभा की यह मात्रा या मानसिक अभिवृद्धि टरमैन द्वारा बनायी गयी एवं डॉ. मैरिलक द्वारा स्वीकृत की गयी तालिका द्वारा प्रदर्शित की गयी है। डी०वी० के अनुसार "विद्यालय या विद्यालय के बाहर प्राप्त अनुभवों में उत्कृष्ट कोटि की सृजनात्मकता निहित रहती है", स्टेनले ग्रे० के शब्दों में "समस्या समाधान की योग्यता दो पदों पर निर्भर करती है। एक, व्यक्ति के सीखने की या अधिगम पाने की बुद्धिवादी क्षमता या बुद्धि और दूसरा, यह कि क्या उक्त व्यक्ति ने क्षमता के भीतर अधिगम पा लिया है।"

स्टेन के शब्दों में "जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो, जो किसी समय में समूह द्वारा उपयोगी मान्य हो, वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है।" एच. हर्बर्टफेक्स के शब्दों में 'सृजनात्मक प्रक्रिया एक चिंतन प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी समस्या का मौलिक एवं उपयोगी ढंग से समाधान किया जाता है।"¹¹ कैनर (1985) के अनुसार गरीब परिवार के बच्चों में आत्मविश्वास के भाव और परिपक्वता में कमी पाई जाती है। हिमशो (1984) के अध्ययन में उच्च वर्ग अपेक्षा निम्न वर्ग के व्यक्तियों में आक्रमणकारी प्रवृत्ति पाई गयी। घोष एवं पाल (1982) ने उच्च सामाजिक-आर्थिक कॉलेज छात्रों तथा छात्राओं में सर्जनात्मक तथा अभियोजन की मात्रा अपेक्षाकृत अधिक पाई है।

अध्ययन की सीमाओं में शामिल हैं कि यह केवल उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों तक सीमित है, नमूना केवल चयनित शहरी और ग्रामीण स्कूलों से लिया गया और सामाजिक-आर्थिक स्थिति के प्रभावों पर बाहरी पर्यावरणीय कारकों को पूरी तरह नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसके बावजूद, यह अध्ययन सामाजिक-आर्थिक स्थिति और छात्रों की सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर के बीच संबंध को समझने में एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

अध्ययन के नमूने में उच्च माध्यमिक स्तर के 160 छात्र शामिल किए गए, जिनमें शहरी और ग्रामीण क्षेत्र के छात्र दोनों शामिल थे। छात्रों का चयन साधारण यादृच्छिक विधि के माध्यम से किया गया ताकि सभी क्षेत्रों का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित हो सके। अध्ययन के निष्कर्ष सांख्यिकीय विश्लेषण पर आधारित थे। सहसंबंध, माध्य, मानक विचलन और अन्य सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग करके सामाजिक-आर्थिक स्थिति और छात्रों की सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर के बीच संबंधों का मूल्यांकन किया गया।

पिछले कई अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति और सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर के बीच गहरा संबंध होता है। लखकर (1968) और मंगल (1978) के अध्ययनों ने स्पष्ट किया कि उच्च सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों में सृजनात्मक और बुद्धि विकास अधिक होता है। इसके अतिरिक्त, शैक्षणिक संसाधनों की उपलब्धता, माता-पिता की शिक्षा और सामाजिक समर्थन प्रणाली बच्चों की संज्ञानात्मक और सृजनात्मक क्षमताओं को सकारात्मक रूप से प्रभावित करती है।

छात्रों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति उनके सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। शहरी क्षेत्र के छात्रों में ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों की तुलना में अधिक सृजनात्मकता और बुद्धि विकास पाया गया। इसके पीछे मुख्य कारण संसाधनों की उपलब्धता, आधुनिक शिक्षा सुविधाएँ और प्रेरक वातावरण है। वहीं, ग्रामीण क्षेत्र के छात्रों में पारंपरिक सामाजिक संरचना और सीमित संसाधनों के कारण सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर में अंतर देखा गया।

सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर में लिंग के आधार पर भी अंतर पाया गया। लड़कों और लड़कियों दोनों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति का प्रभाव समान रूप से देखा गया, लेकिन कुछ मामलों में लड़कियों ने सांस्कृतिक और पारिवारिक प्रतिबंधों के कारण उच्च सृजनात्मकता दिखाने में थोड़ा अंतर दिखाया। अध्ययन ने यह भी दर्शाया कि बच्चों की शिक्षा के प्रति परिवार की दृष्टि और प्रेरणा उनके संज्ञानात्मक विकास के लिए महत्वपूर्ण कारक हैं।

अध्ययन की सीमा- अध्ययन की सीमाओं में शामिल हैं कि यह केवल उच्च माध्यमिक स्तर के छात्रों तक सीमित है, नमूना केवल चयनित शहरी और ग्रामीण स्कूलों से लिया गया और सामाजिक-आर्थिक स्थिति के प्रभावों पर बाहरी पर्यावरणीय कारकों को पूरी तरह नियंत्रित नहीं किया जा सकता। इसके बावजूद, यह अध्ययन सामाजिक-आर्थिक स्थिति और छात्रों की सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर के बीच संबंध को समझने में एक व्यापक दृष्टिकोण प्रदान करता है।

28 उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों के सामाजिक-आर्थिक स्थिति का सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर पर प्रभाव

उद्देश्य: माध्यमिक विद्यालय बालकों में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का उसके सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर के बीच गहरा संबंध होता है। की समग्र विकास में सृजनात्मकता एवं बुद्धिमत्ता स्तर को देखने से है।

परिकल्पनाएं— उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति का बालकों के उच्च एवं निम्न सृजनात्मकता एवं बुद्धि स्तर के बीच में सार्थक अन्तर पाया जायेगा।

प्रतिदर्श: 180 प्रतिदर्श बालकों का चयन उद्देश्य पूर्ण किया गया, जोकि गया जी शहरी क्षेत्र से माध्यमिक विद्यालय 9वीं एवं 10वीं कक्षा के छात्रों को सम्मिलित किया गया। परिशिष्ट-विभिन्न उपकरण के माध्यम से बालकों की स्थिति पर साक्षात्कार सूची और सामाजिक-आर्थिक स्थिति शहरी एस. सुमन 2012 के द्वारा बालक से संबंधित जनसंख्याकीय कारको को लिया गया है। इसके अतिरिक्त जी०आई०टी०-जनरल इंटेलिजेंस टेस्ट मोहसिन (1968, बौद्धिक विकास) को उपयोग में लाकर बालकों के सामान्य बुद्धि स्तर जांच पर किया जाएगा। साथ ही सृजनात्मक चिंतन टेस्ट-सृजनात्मक चिंतन डॉ० बाकर मेहंदी (1978) शब्दों द्वारा एवं चित्रों द्वारा बालकों के परीक्षण माला प्रयोग में लाया गया।

परिणाम :-

परिकल्पना-1 में बालकों में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का उच्च एवं निम्न सृजनात्मकता स्तर के बीच में सार्थक अन्तर को देखना है। जिनका अभिकलन सारिणी-01 में निरूपित किया जा रहा है।

सारणी-01

उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का सृजनात्मकता स्तर के बीच में सार्थक अन्तर

बालक समूह	N	उच्च सृजनात्मकता		t	df	सार्थकता
		Mean	SD			
उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	21.61	2.05	2.86	178	p<.01
निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	20.38	2.71			
बालक समूह	N	निम्न सृजनात्मकता		t	df	सार्थकता
		Mean	SD			
उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	21.55	2.06	2.78	178	p<.01
निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	20.59	2.64			

सारणी-1 में बालकों में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का उनके उच्च एवं निम्न सृजनात्मकता स्तर में सार्थक अंतरों को देखना है, प्राप्त परिणाम दर्शाता है कि उच्च सृजनात्मकता स्तर में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का मध्य मान ($t=2.86, df=178, p<.01$) पाया गया। जब कि निम्न सृजनात्मकता स्तर में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का मध्य मान ($t=2.78, df=178, p<.01$) पाया गया। अतः परिणाम परिकल्पना को सार्थकता प्रदान करता है।

परिकल्पना-2 में बालकों में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का उच्च एवं निम्न बुद्धि स्तर के बीच में सार्थक अन्तर को देखना है। जिनका अभिकलन सारिणी-02 में निरूपित किया जा रहा है।

सारणी-02

उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का उच्च एवं निम्न बुद्धिलब्धि स्तर के बीच में सार्थक अन्तर

बालक समूह	N	उच्च बुद्धिलब्धि		t	df	सार्थकता
		Mean	SD			
उच्च सामाजिक-आर्थिकस्थिति	90	21.66	2.04	2.89	178	p<.01
निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	20.34	2.76			
बालक समूह	N	निम्न बुद्धिलब्धि		t	df	सार्थकता
		Mean	SD			
उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	21.45	2.03	2.67	178	p<.01
निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति	90	20.34	2.78			

सारणी-2 में बालकों में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का उनके उच्च एवं निम्न बुद्धिलब्धि में सार्थक अंतरों को देखना है, प्राप्त परिणाम दर्शाता है कि उच्च बुद्धिलब्धि में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का मध्य मान ($t=2.89$, $df=178$, $p<.01$) पाया गया। जब कि निम्न बुद्धिलब्धि में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का मध्य मान ($t=2.67$, $df=178$, $p<.01$) पाया गया। अतः परिणाम परिकल्पना को सार्थकता प्रदान करता है।

परिकल्पना-2 में बालकों में सृजनात्मकता और बुद्धिलब्धि के प्राप्तांकों में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सार्थक अंतर को सारणी-3 में प्रस्तुत किया जा रहा है:-

सारणी-3

बालक समूह	N	उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति		t	df	सार्थकता
		Mean	SD			
सृजनात्मकता	180	32.31	4.87	3.14	178	$p<.01$
बुद्धिलब्धि	180	31.42	5.03			

सारणी-3 में बालकों के सृजनात्मकता और बुद्धिलब्धि में उच्च एवं निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सार्थक अंतर पाया गया ($t=3.14$, $df=178$, $p<.01$)। अतः परिणाम परिकल्पना को सार्थकता प्रदान नहीं करता है।

चर्चा- इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि सामाजिक-आर्थिक स्थिति केवल छात्रों की शैक्षणिक सफलता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनकी सृजनात्मक सोच, बुद्धिमत्ता, समस्या समाधान की क्षमता और नवाचार के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन शिक्षकों, स्कूल प्रशासन और नीति निर्माताओं के लिए महत्वपूर्ण संकेत प्रदान करता है कि सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुसार छात्रों की सृजनात्मक और बुद्धि विकास गतिविधियों को समायोजित किया जाए।

निष्कर्ष- अंततः, यह शोध इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि उच्च सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले छात्रों में सृजनात्मकता और बुद्धि स्तर अधिक विकसित होता है, जबकि सीमित सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि वाले छात्रों में इन क्षमताओं में अंतर देखा गया। इस अध्ययन के परिणाम शिक्षा नीति निर्धारण, स्कूल पाठ्यक्रम विकास और शिक्षकों द्वारा शिक्षण रणनीतियों में सुधार के लिए मार्गदर्शन प्रदान करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. प्रो० हुमायूँ कबीर (2004) माध्यमिक शिक्षा: शिक्षा की एक कड़ी, भारत प्रकाशक।
2. क्रो० एवं टरमैन (1966) बुद्धि-लब्धि और प्रतिभा का सूचकांक, ई. बुक।
3. डी० वी० जान (1968), विद्यालय या विद्यालय के बाहर प्राप्त अनुभवों में उत्कृष्ट सृजनात्मकता का अिकास, खण्ड-11, पृष्ठ-35-45।
4. स्टेनले ग्रे० वएच. हर्बर्टफेक्स (1944), समस्या समाधान की योग्यता और बुद्धि संबंधी अध्ययन, सृजनात्मक प्रक्रिया और चिंतन हेल्टर: सामान्य मनोविज्ञान, प. नयू जरसी।
5. कैनर, श्र. (1985) गरीब परिवार के बच्चों में आत्मविश्वास और परिपक्वता का अध्ययन, अग्रवाल पब्लिकेशन।
6. हिमशो, एच. (1984) सामाजिक वर्ग और व्यक्तित्व प्रवृत्तियाँ, अग्रवाल पब्लिकेशन।
7. घोष, पी. व पाल, आर. (1982). उच्च सामाजिक-आर्थिक छात्र और सृजनात्मकता का अध्ययन, टाटा मेग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी लिमिटेड।
8. लखकर, आर. (1968), सामाजिक-आर्थिक स्थिति और छात्रों की सृजनात्मकता, इलाहाबाद: शारदा पुस्तक भवन।
9. मंगल, ए एस. (1978) संज्ञानात्मक और सृजनात्मक क्षमताओं पर सामाजिक पृष्ठभूमि का प्रभाव. आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।

देवरिया जनपद में साक्षरता का क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप

सुजाता मल्ल*

Abstract

The Paper in hand Intends to analyze the satial pattern of literacy in backward economy with viewpoint of enhacements of quality of life . The study is based on secondary data collected from different government sources. The study suggest that there is need to diversity in economic activities for enhancement of literacy.

किसी भी क्षेत्र की भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताएं उस क्षेत्र के स्थानीय संगठन को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। प्रत्येक क्षेत्र का अपना एक अलग अस्तित्व होता है। प्राचीन काल से ही देवरिया बाबा एवं बाबा राघव दास की तपोस्थल होने के कारण देवरिया जनपद का अपना एक अलग महत्व रहा है। किसी भी क्षेत्र के विभिन्न भौगोलिक तत्वों का आपसी अन्तर्सम्बन्ध उस क्षेत्र के स्थानिक संगठन को वास्तविक आकार प्रदान करता है। भौगोलिक विशेषताओं के साथ-साथ किसी भी क्षेत्र की विकास प्रक्रिया से क्षेत्र में होने वाले विभिन्न परिवर्तनों को दर्शाती है। किसी क्षेत्र के विकास एवं असंतुलन दोनों का प्रमुख कारण क्षेत्र की भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं में विविधता का होना है। किसी भी क्षेत्र के विकास के विभिन्न स्तरों एवं आयामों का अध्ययन करने से पहले उस क्षेत्र के भौतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का अध्ययन आवश्यक होता है। देवरिया जनपद का इतिहास प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। यह क्षेत्र प्राचीन कोसल महाजनपद का अंग माना जाता था और रामायण काल में भी इसका उल्लेख मिलता है। बौद्ध काल में देवरिया का क्षेत्र अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया, क्योंकि इसके निकट स्थित कुशीनगर में महात्मा बुद्ध को महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ था, जिससे यह क्षेत्र बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार का एक प्रमुख केन्द्र बना। मौर्यकाल में यह क्षेत्र सम्राट अशोक के साम्राज्य के अंतर्गत रहा और इस समय बौद्ध धर्म का व्यापक प्रभाव देखने को मिलता है। गुप्तकाल में कृषि, ग्राम व्यवस्था, शिक्षा और संस्कृति का उल्लेखनीय विकास हुआ, जिससे यह क्षेत्र आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से सुदृढ़ हुआ।

मध्यकाल में देवरिया जनपद विभिन्न शासकों के अधीन रहा। पहले यह पाल और सेनवंश के नियंत्रण में रहा, बाद में दिल्ली सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य का हिस्सा बना। मुगलकाल में यह क्षेत्र प्रशासनिक रूप से गोरखपुर सरकार के अंतर्गत आता था। इस काल में कृषि का विस्तार, भू-राजस्वव्यवस्था का विकास और ग्रामीण बसावट में वृद्धि हुई। ब्रिटिश शासन के दौरान देवरिया गोरखपुर जनपद का ही भाग बना रहा, किंतु रेलवे और सड़कों के विकास के कारण यह एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र के रूप में उभरने लगा। अंततः 17 मार्च 1946 को देवरिया को गोरखपुर से अलग कर एक स्वतंत्र जनपद घोषित किया गया।

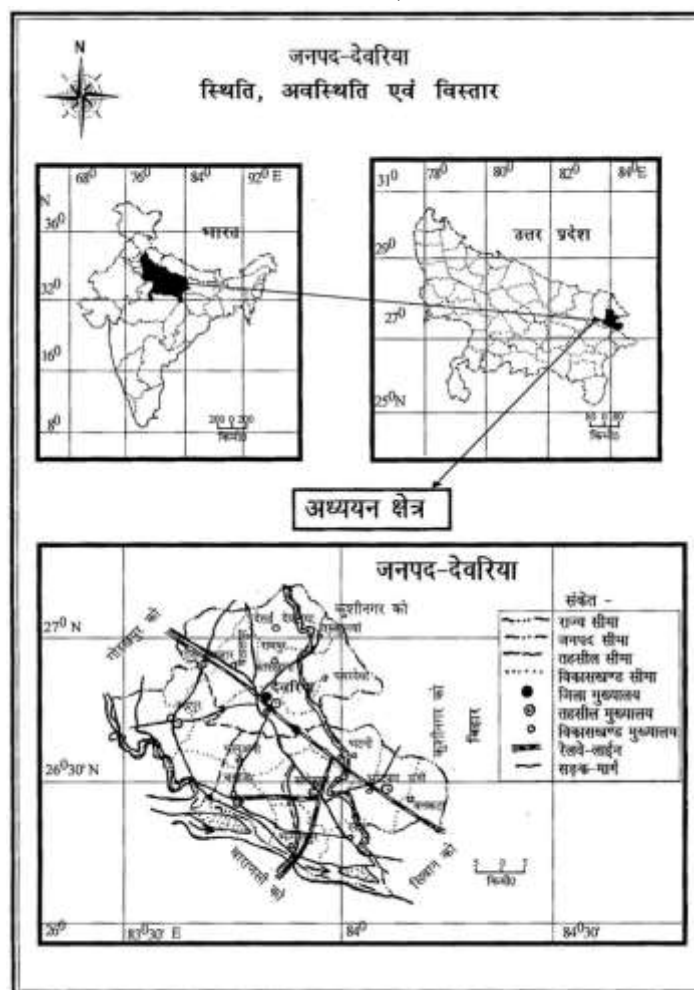
स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान देवरिया जनपद की जनता ने सक्रिय भागीदारी निभाई। विशेष रूप से भारत छोड़ो आंदोलन (1942) के समय ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक जनजागरण देखा गया। स्वतंत्रता के बाद देवरिया एक कृषि प्रधान जनपद के रूप में विकसित हुआ, जहाँ शिक्षा, प्रशासन और परिवहन के क्षेत्र में निरंतर प्रगति हुई। वर्ष 1994 में देवरिया जनपद से अलग होकर कुशीनगर एक नया जनपद बना। इस प्रकार देवरिया जनपद का इतिहास प्राचीन सभ्यताओं, धार्मिक महत्व, औपनिवेशिक अनुभव और स्वतंत्र भारत के विकासक्रम से जुड़ा हुआ है, जो इसे पूर्वांचल का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र बनाता है।

अध्ययन क्षेत्र—देवरिया जनपद की भौतिक विशेषताएं

अध्ययन क्षेत्र देवरिया जनपद (उत्तर प्रदेश) की भौतिक विशेषताएं इसके भौगोलिक स्वरूप, जलवायु, मृदा, अपवाहतंत्र तथा प्राकृतिक संसाधनों के माध्यम से स्पष्ट होती हैं। देवरिया जनपद उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग में स्थित है और यह पूर्णतः गंगादृ घाघरा के जलोढ़ मैदान का अंग है। इसकी भौगोलिक स्थिति लगभग 26° से 27° उत्तरी अक्षांश तथा 83° से 84° पूर्वी देशांतर के मध्य पाई जाती है। जनपद का अधिकांश भाग समतल है तथा समुद्रतल से औसत ऊँचाई लगभग 70 से 90 मीटर के बीच है, जिससे यह क्षेत्र कृषि,

* शोध छात्रा, बुद्ध पी0जी0कालेज, कुशीनगर

बसावट और परिवहन के लिए अत्यंत अनुकूल बन जाता है। देवरिया जनपद की भू-आकृतिक संरचना नवीन एवं पुरानी जलोढ़ से निर्मित है। यहाँ किसी प्रकार के पर्वत, पठार या ऊँचे टीले नहीं पाए जाते।



संख्या- 1

अध्ययन का उद्देश्य—देवरिया जनपद की भौगोलिक, सामाजिक एवं शैक्षिक विशेषताओं का समग्र विश्लेषण करना है। इस अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य जनपद में साक्षरता के स्तर तथा उसके क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप को समझना है, जिससे शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के बीच विद्यमान शैक्षिक असमानताओं का पता लगाया जा सके। साथ ही, अध्ययन का उद्देश्य लैंगिक आधार पर साक्षरता में पाए जाने वाले अंतर का विश्लेषण करना तथा यह स्पष्ट करना है कि भौतिक विशेषताएँ, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ और आधारभूत सुविधाएँ किस प्रकार साक्षरता को प्रभावित करती हैं। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन देवरिया जनपद में शिक्षा के क्षेत्र में विद्यमान समस्याओं की पहचानकर भविष्य में शैक्षिक विकास के लिए उपयुक्त सुझाव प्रस्तुत करने का भी लक्ष्य रखता है।

साक्षरता—

साक्षरता किसी क्षेत्र विशेष की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक गतिशीलता को दिशा देने वाला एक आधारभूत तत्व है। यह न केवल चतुर्दिक विकास की प्रक्रिया को सुदृढ़ करती है, बल्कि संरचनात्मक परिवर्तनों को भी प्रभावी रूप से प्रोत्साहित करती है।

देवरिया जनपद (उत्तर प्रदेश) में साक्षरता का क्षेत्रीय वितरण प्रतिरूप शहरी, ग्रामीण तथा लैंगिक असमानताओं को संख्यात्मक रूप से स्पष्ट करता है। जनगणना 2011 के अनुसार देवरिया जनपद की कुल औसत साक्षरता दर 71.13 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 83.27 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 59.38 प्रतिशत पाई गई है। इससे स्पष्ट होता है कि जनपद में साक्षरता का स्तर मध्यम है, किंतु पुरुष और महिला साक्षरता के बीच लगभग 24 प्रतिशत का अंतर विद्यमान है। यह अंतरविशेष रूप से सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों और शिक्षा तक असमान पहुँच को दर्शाता है।

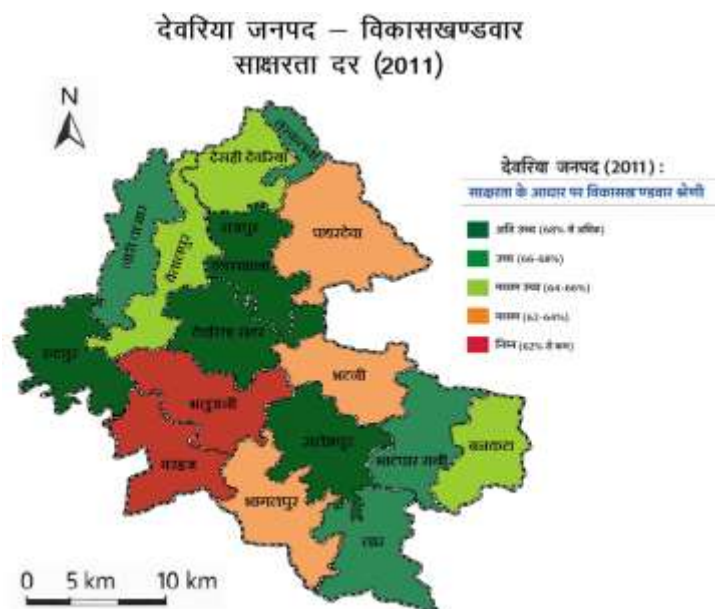
क्षेत्रीय दृष्टि से साक्षरता का वितरण असमान है। शहरी क्षेत्रों में औसत साक्षरतादर 80.04 प्रतिशत है, जहाँ पुरुष साक्षरता 86.77 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता 72.81 प्रतिशत दर्ज की गई है। इसके विपरीत ग्रामीण क्षेत्रों में औसत साक्षरता दर 70.09 प्रतिशत है, जिसमें पुरुष साक्षरता 82.84 प्रतिशत तथा महिला साक्षरता मात्र 57.91 प्रतिशत पाई जाती है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शहरी क्षेत्रों में शिक्षा सुविधाओं, जागरूकता और आधारभूत संरचना के कारण साक्षरता का स्तर ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में काफी अधिक है।

तालिका संख्या : 1

जनपद देवरिया : साक्षरता का वितरण (वर्ष 2011)

श्रेणी	साक्षरता (प्रतिशत में)	विकासखण्डों की संख्या	विकासखण्डों के नाम
अतिउच्च	68 से अधिक	4	देवरियासदर, रुद्रपुर, रामपुरकारखाना, सलेमपुर
उच्च	66-68	4	गौरीबाजार, लार, भाटपाररानी, तरकुलवा
मध्यमउच्च	64-66	3	देसीहीदेवरिया, बैतालपुर, बनकटा
मध्यम	62-64	3	पथरदेवा, भागलपुर, भटनी
निम्न	62 से कम	2	भलुअनी, बरहज

स्रोत-जिलासांख्यिकी पत्रिका 2011



तालिका संख्या 1 एवं चित्र संख्या 2 से स्पष्ट होता है कि देवरिया जनपद में **अतिउच्च** श्रेणी की साक्षरता के अन्तर्गत चार विकास खण्ड सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत देवरिया सदर में लगभग 70 प्रतिशत, रुद्रपुर में लगभग 69 प्रतिशत, रामपुर कारखाना में लगभग 68.5 प्रतिशत एवं सलेमपुर विकासखण्ड में लगभग

68 प्रतिशत साक्षरता पायी जाती है। इन विकास खण्डों की स्थिति अध्ययन क्षेत्र के मध्य एवं दक्षिणी भाग में पायी जाती है।

उच्च श्रेणी की साक्षरता के अन्तर्गत चार विकास खण्ड सम्मिलित हैं, जिनमें गौरीबाजार, लार, भाटपाररानी तथा तरकुलवा विकासखण्डों में 66 से 68 प्रतिशत के मध्य साक्षरता पायी जाती है। इनकी स्थिति अध्ययन क्षेत्र के पूर्वी एवं दक्षिण-पूर्वी भाग में है।

मध्यम-उच्च श्रेणी की साक्षरता के अन्तर्गत तीन विकास खण्ड सम्मिलित हैं, जिनमें देसही देवरिया, बैतालपुर तथा बनकटा विकास खण्डों में 64 से 66 प्रतिशत साक्षरता पायी जाती है। इन विकासखण्डों की स्थिति अध्ययन क्षेत्र के मध्य एवं पश्चिमी भाग में है।

मध्यम श्रेणी की साक्षरता के अन्तर्गत तीन विकास खण्ड सम्मिलित हैं, जिनमें पथरदेवा, भागलपुर एवं भटनी विकासखण्डों में 62 से 64 प्रतिशत साक्षरता पायी जाती है। इनकी स्थिति अध्ययन क्षेत्र के पश्चिमी एवं उत्तर-पश्चिमी भाग में पायी जाती है।

निम्न श्रेणी की साक्षरता के अन्तर्गत दो विकासखण्ड सम्मिलित हैं। इसके अन्तर्गत भलुअनी तथा बरहज विकासखण्डों में 62 प्रतिशत से कम साक्षरता पायी जाती है। इन विकासखण्डों की स्थिति मुख्यतः नदी-तटीय एवं ग्रामीण प्रधान है जिनकी स्थिति जनपद के दक्षिणी – पश्चिमी भाग में है।

निष्कर्ष—जनपद देवरिया में साक्षरता की दर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से निरन्तर बढ़ रहा है, यहाँ पुरुष एवं स्त्री साक्षरता दर में काफी अन्तर पाया गया है। क्षेत्र में अति उच्च साक्षरता दर जनपद के नगरीय विकासखण्डों में है जहाँ पर शिक्षा के प्रति लोगों में जागरूकता है तथा सरकारी व निजी शिक्षण स्थानों का पूर्ण विकास हुआ है। जिन विकासखण्डों में कम साक्षरता दर पाया जाता है वे जनपद के दक्षिणी-पश्चिमी भाग में स्थित हैं इन क्षेत्रों में प्रतिवर्ष बढ़ आना एवं अवस्थापनात्मक सुविधाओं का अभाव तथा शिक्षा के प्रति लोगों में जागरूकता का अभाव पाया जाता है।

References:

- Chanddana, R.C. and Siddhu, M. S. (1980): Introduction to population Geography, New Delhi, P.17.
 Clark, John, (1973): Population Geography : Pergamon press , oxford, second edition ,P.14.
 Gosal, G.S.(1985): Literacy of India , An Interpretative study, rural Sociology, Vol.129.
 मौर्य, एस0डी0 (2015): जनसंख्या भूगोल, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज, पृष्ठ सं0 96।
 सांख्यिकी पत्रिका(2011), जिला देवरिया।

जनपद बाराबंकी का भूमि उपयोग प्रतिरूप : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. श्री प्रकाश सिंह*

दिनेश सिंह**

सारांश :

वर्तमान जनपद बाराबंकी के आर्थिक विकास में तीव्र जनसंख्या वृद्धि एक चुनौती के रूप में सामने खड़ी है। भूमि एक सीमित संसाधन है, जिसे घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता है, लेकिन इसका नियोजित ढंग से उपयोग किया जाये तो अधिकतम जनसंख्या की आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता है। प्रकृति ने हमें अनेक निःशुल्क उपहार प्रदान किये हैं, जिसमें से भूमि एक अमूल्य प्राकृतिक उपहार है। प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग मानव विवेकपूर्ण करता है, तो अनेक समस्याओं का समाधान स्वतः हो जाता है। प्रकृति में स्वः नियामक प्रवृत्ति पायी जताई है, जिसकी एक निश्चित सीमा होती है। संसाधनों के दुरुपयोग अथवा अत्यधिक शोषण से प्रकृति में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस असंतुलन/क्षति की पूर्ति अथवा संतुलन स्थापित होने में प्राणी जगत को अच्छा खासा खामियाजा भुगतना पड़ता है, अतः प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग सुनियोजित तथा विवेकपूर्ण तरीकों से किया जाना चाहिए, जिससे प्रकृति में संतुलन बना रहे। अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग की दृष्टि से असमानता देखने को मिलती है। जनपद बाराबंकी में भूमि उपयोग वन भूमि, वर्तमान परती, अन्य परती, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि, कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि, चारागाह, उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल, शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल, कृष्य बेकार भूमि आदि में किया जाता है। सर्वाधिक भू-भाग शुद्ध बोया गया क्षेत्र के अंतर्गत है इसके बाद कृषि के अतिरिक्त भूमि उपयोग का स्थान आता है। अध्ययन क्षेत्र की विकासखंडों में भूमि उपयोग की दृष्टि से काफी विषमताएं हैं। जनपद के लगभग प्रत्येक विकासखंड में 2010-11 से 2020-21 तक कमोवेश भूमि उपयोग में परिवर्तन देखने को मिले हैं।

मुख्य शब्द : भूमि उपयोग, जनसंख्या, संसाधन, भूमि, प्रकृति।

प्रस्तावना

जनसंख्या और भूमि में घनिष्ट सम्बन्ध पाया जाता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के प्रभाव से भूमि उपयोग में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन होते रहते हैं। भूमि उपयोग प्रतिरूप सदैव आवश्यकताओं के अनुरूप बदलता रहता है। भूमि उपयोग का निर्धारण किसी क्षेत्र के निवासियों की कार्य कुशलता एवं विकास स्तर पर निर्भर करता है, कि उस भू-भाग के निवासी किस अवस्था में हैं अर्थात् वहां के मानव का आर्थिक, सामाजिक एवं बौद्धिक स्तर किस प्रकार का है। स्थान विशेष के संसाधनों का उपयोग वहां के निवासित मानव समुदायों की बौद्धिक क्षमता एवं तकनीकी ज्ञान पर निर्भर करता है। निरंतर तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या ने भूमि उपयोग प्रतिरूप को प्रभावित किया है। जनसंख्या के भरण पोषण के लिए भूमि उपयोग का अध्ययन करना अति आवश्यक है। खाद्यान्नों की आपूर्ति करने के लिए भूमि का अधिकतम उपयोग करना तथा खाद्यान्नों में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना प्रमुख लक्ष्य है। वुड ने (1972) में भूमि उपयोग पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, कि 'भूमि उपयोग केवल प्राकृतिक भू-दृश्य या वनस्पति आच्छादित भू-दृश्य के सन्दर्भ में ही नहीं बल्कि मानवीय क्रियाओं से उत्पन्न उपयोगी सुधारों के रूप में प्रयुक्त होना चाहिए।' डी.एस. चौहान (1996) के अनुसार - 'प्राकृतिक पर्यावरण में भूमि प्रयोग एक तत्सामयिक प्रक्रिया है, जबकि मानवीय इच्छाओं के अनुरूप अपनाया गया भूमि

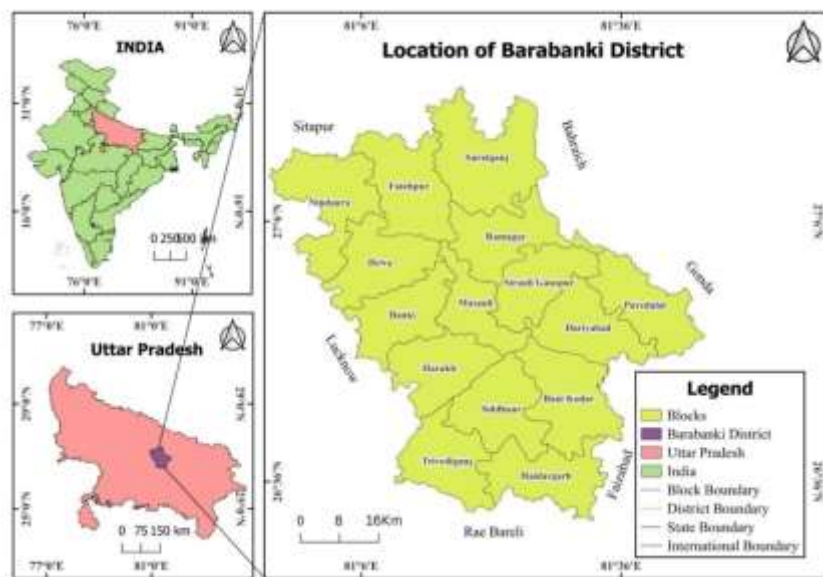
* सहायक आचार्य, भूगोल विभाग दी.द.उ.गो. विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

** शोध छात्र, भूगोल विभाग, दी.द.उ.गो. विश्वविद्यालय, गोरखपुर।

एक दीर्घकालिक प्रक्रिया है।' **बेनजरी** के अनुसार 'भूमि उपयोग' प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक उपादानों का प्रतिफल है। विभिन्न उपर्युक्त कथनों के अलोक में हम कहा जा सकता है, कि भूमि उपयोग से आशय किसी भू-भाग का विभिन्न उद्देश्यों से उपयोग में लाये जाने से है। अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग प्रतिरूप वन भूमि, वर्तमान परती, अन्य परती, ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि, कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि, चारागाह, उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल, शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल, कृष्य बेकार भूमि आदि में विभाजित किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र की स्थिति एवं विस्तार

प्रस्तुत अध्ययन क्षेत्र बाराबंकी का है, जो कि उत्तर प्रदेश में स्थित एक जनपद का एक है, जो कि फैजाबाद (वर्तमान अयोध्या) संभाग का एक जिला है। अध्ययन क्षेत्र का अक्षांशीय विस्तार 26°30' से 27°19' उत्तरी अक्षांशों के मध्य तथा इसका देशांतरीय विस्तार 80°51' से 81°51' पूर्वी देशांतर के मध्य फैला हुआ है। अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक क्षेत्रफल 3891.5 वर्ग किलोमीटर है। यहां की कुल जनसंख्या 3260699 लाख है। प्रशासनिक दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र में 6 तहसील एवं 15 विकासखण्डों में विभाजित है, ग्रामीण एवं नगरीय दोनों प्रकार के भू-उपयोग प्रतिरूपों को स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं। जनपद में प्रवाहित होने वाली प्रमुख नदियों में घागरा एवं गोमती है, इसके अतिरिक्त जमरिया, रेठ, कल्याणी नदियां प्रवाहित होती है।



मानचित्र संख्या 1

अध्ययन क्षेत्र में एक शारदा नहर का निर्माण किया गया है, जिससे एक विशाल भूखण्ड पर सिंचाई का कार्य किया जाता है। अध्ययन क्षेत्र की पश्चिमी प्राकृतिक सीमा गोमती नदी द्वारा तथा पूर्वी सीमा घाघरा द्वारा निर्धारित की जाती है। अध्ययन क्षेत्र में सामान्यतः जलोढ़ मिट्टी पायी जाती है, परन्तु विभिन्न प्रकार की मिट्टियां का पायी जाती हैं। जैसे- मटियार (मसौली, निन्दूरा आदि), दोमट (बंकी, बनी कोडर आदि) एवं बलुई दोमट (रामनगर, हरख आदि) मिट्टियाँ पायी जाती हैं। जलवायु की दृष्टि से अध्ययन क्षेत्र उपोष्ण मानसूनी जनवायु के क्षेत्र में आता है। ग्रीष्म ऋतू में अधिक गर्मी पड़ती है, जिसे स्थानीय भाषा में 'लू' नाम से जानते हैं। वर्षा ऋतू में जनपद में सर्वाधिक वर्षा होती है, जो मुख्यतः दक्षिण-पश्चिम मानसून पवनों के प्रभाव से होती

है। इस अवधि में होने वाली वर्षा कृषि कार्यों, विशेषकर खरीफ फसलों के उत्पादन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। शीत ऋतु में कभी-कभी पश्चिमी विक्षोभों के कारण हल्की वर्षा होती है, जिसे स्थानीय रूप से 'मावठ' कहा जाता है। यह वर्षा रबी फसलों के लिए लाभकारी सिद्ध होती है, किंतु कुछ अवसरों पर अत्यधिक या अनियमित वर्षा के साथ ओलावृष्टि भी हो जाती है, जिससे फसलों को क्षति पहुँचती है। जनपद में वर्षा का क्षेत्रीय वितरण समान नहीं है, बल्कि पश्चिमी एवं दक्षिण-पश्चिमी भागों में अपेक्षाकृत अधिक वर्षा दर्ज की जाती है। इस अधिक वर्षा वाले क्षेत्र में नवाबगंज, रामनगर घाट तथा सिरौलीगौसपुर तहसीलों को सम्मिलित किया जाता है, जहाँ अनुकूल भौगोलिक एवं मौसमी परिस्थितियों के कारण अपेक्षाकृत उत्तम वर्षा प्राप्त होती है।

शोध का उद्देश्य

प्रस्तुत अध्ययन में बाराबंकी जनपद में भूमि उपयोग प्रतिरूप का वर्ष 2010-11 से 2020-21 का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। भूमि उपयोग में हो रहे निरंतर परिवर्तन को ध्यान में रख कर अध्ययन किया गया है। अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

1. अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग के तक बदलते प्रतिरूप का कालिक अध्ययन करना।
2. परिवर्तित भूमि उपयोग प्रतिरूप का प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक पर्यावरण पर पड़ रहे प्रभावों का अध्ययन करना।

आंकड़ा संग्रह एवं शोध विधि

प्रस्तुत शोध पत्र में वर्ष 2010-11 से 2020-21 के भूमि उपयोग प्रतिरूप का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। सम्पूर्ण अध्ययन द्वातीयक आंकड़ों पर आधारित है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक विधियों को प्रयोग में लाया गया है। भूमि उपयोग प्रतिरूप का विश्लेषण आंकड़ों का संग्रह कर विश्लेषित किया गया है। अध्ययन का केंद्र बिंदु विकासखण्ड को मानकर तुलनात्मक अध्ययन किया गया है तथा वर्तमान (2020-21) भूमि उपयोग प्रतिरूप को समझाने के लिए, जनपद स्तर पर भूमि उपयोग को पाई आरेख के माध्यम से दिखाया गया है। शोध पत्र को सरल एवं बोधगम्य बनाने के लिए मानचित्र, तालिका, पाई आरेख आदि का उपयोग किया गया है।

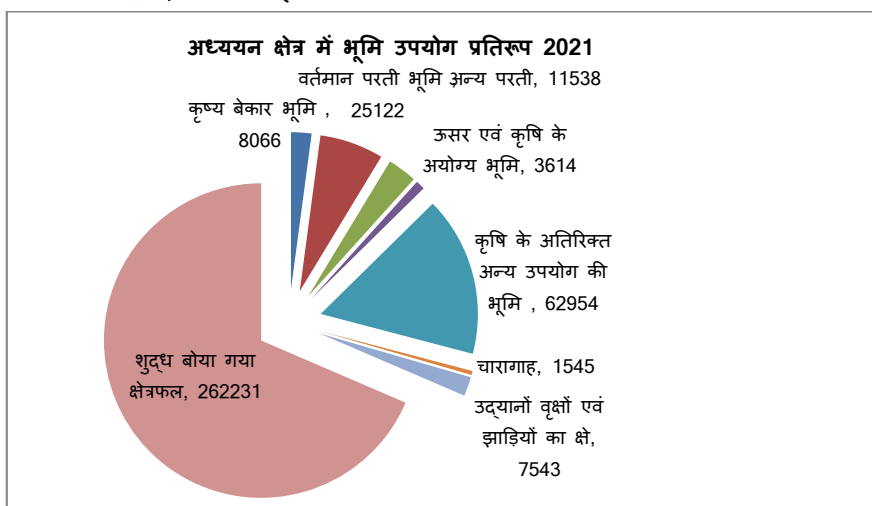
तालिका 1 : अध्ययन क्षेत्र में भू-उपयोग प्रतिरूप (क्षेत्रफल हेक्टेयर एवं प्रतिशत में) 2021

मद	भूमि उपयोग प्रतिरूप	
	2020-21	
	क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)	क्षेत्रफल (प्रतिशत में)
वन भूमि	5974	1.53
कृष्य बेकार भूमि	8066	2.07
वर्तमान परती भूमि	25112	6.46
अन्य परती भूमि	11538	2.97
ऊसर एवं कृषि अयोग्य भूमि	3614	0.94
कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि	62954	16.20
चारागाह	1545	0.40
उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल	7543	1.94
शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	262231	67.48
कुल प्रतिवेदित क्षेत्रफल	388587	100

स्रोत - जिला सांख्यिकीय पत्रिका, बाराबंकी, 2022।

अध्ययन क्षेत्र का भूमि उपयोग प्रतिरूप

भूमि उपयोग से आशय मनुष्य द्वारा भूतल का उपयोग विभिन्न प्रकार के कार्यों को संपन्न करने से है। प्रस्तुत शोध प्रपत्र में 2020-21 भूमि उपयोग के वर्तमान अध्ययन करने से ज्ञात हुआ है कि वर्तमान वर्ष में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 388587 हेक्टेयर भूमि है। जिसका उपयोग विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए किया जाता है, जिसमें वन भूमि का विस्तार 5974 हेक्टेयर (1.53%), कृष्य बेकार भूमि 8066 हेक्टेयर (2.07%), वर्तमान परती 25122 हेक्टेयर (6.46%), अन्य परती 11538 हेक्टेयर (2.97%), ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि 3614 हेक्टेयर (0.93%), कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि 62954 हेक्टेयर (16.20%), चारागाह 1545 हेक्टेयर (0.40%), उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल 7543 हेक्टेयर (1.94%), तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल 262231 हेक्टेयर (67.48%) भूमि का वितरण पाया गया है। जनपद में भूमि उपयोग को निम्न पाई आरेख के माध्यम से दर्शाया गया है -



चित्र संख्या 1

जनपद के विकासखण्डों में भूमि उपयोग में काफी विषमता देखने को मिलती है। इस विषमता को तालिका में आसानी से देखा जा सकता है। भूमि उपयोग प्रतिरूप को 2 तालिकाओं 2 तथा तालिका 3 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 2 : विकासखण्डवार भूमि उपयोग का विवरण (क्षेत्रफल प्रतिशत में) 2011-2021

विकासखण्ड वार	प्रतिवेदित क्षेत्रफल (हेक्टेयर में)		वन		कृष्य बेकार भूमि		वर्तमान परती		अन्य परती	
	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21
निन्दूरा	30089	13274	9.42	9.39	4.42	4.48	8.85	9.38	7.13	7.32
फतेहपुर	32295	33543	10.45	10.41	3.28	3.35	5.68	5.41	5.95	5.68
सूरतगंज	33261	34534	0.24	0.30	16.42	16.20	11.19	12.28	9.52	10.59
रामनगर	25906	27181	0.00	0.00	5.68	5.71	5.43	5.10	7.52	7.86
देवां	25615	26802	14.98	14.89	4.14	4.21	8.41	8.81	7.18	7.41
बंकी	22649	23463	0.15	0.21	14.49	14.31	6.32	6.20	9.73	10.56

हरख	23760	24951	15.32	15.24	1.96	2.04	5.43	4.31	1.20	0.01
मसौली	18551	19764	0.93	0.98	5.88	5.90	5.52	5.21	6.83	6.89
सिद्धौर	26132	27524	2.10	2.14	4.50	4.56	5.61	5.28	4.86	4.19
त्रिवेदीगंज	23624	24828	6.90	6.89	3.64	3.71	5.00	4.56	8.13	8.69
हैदरगढ़	25893	27136	19.58	19.51	7.54	7.51	6.80	6.81	8.86	9.69
दरियाबाद	20428	21634	2.67	2.71	3.88	3.95	5.60	5.31	5.35	4.87
बनी कोडर	30012	31180	17.18	17.07	9.61	9.52	6.59	6.54	3.94	2.92
पूरे डलई	24916	25921	0.03	0.10	11.90	11.74	6.20	6.07	5.59	5.20
सिरौलीगौसपुर	23327	24566	0.03	0.10	2.40	2.50	7.65	7.84	7.26	7.49
योग ग्रामीण	386458	386301	100	100	99.78	99.76	99.68	99.19	99.06	99.44
योग नगरीय	2129	2286	0.00	0.00	0.22	0.23	0.32	0.80	0.94	0.55
योग जनपद	388587	388587	100	100	100	100	100	100	100	100

स्रोत - जिला सांख्यिकीय पत्रिका, बाराबंकी, 2012-2022 ।

वन भूमि

वनस्पति किसी स्थान विशेष का एक महत्वपूर्ण जैविक संसाधन है, जिसे मानव अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए उपयोग में लता है। वनस्पति का पर्यावरण जगत में एक महत्वपूर्ण स्थान है वन पर्यावरण से कार्बन-डाई ऑक्साइड को ग्रहण कर जीवनदायनी ऑक्सीजन गैस निर्मुक्त करते हैं। वनों का सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान है। जनपद के विकासखण्डों में वनों का वितरण बहुत ही असमान है। वर्ष 2010-11 में सर्वाधिक वन हैदरगढ़ (19.58%) विकासखण्ड में जबकि न्यूनतम वन पूरे डलई (0.03%) तथा सिरौली-गौसपुर में देखे गये। वर्ष 2020-21 में सर्वाधिक वन (19.51%) हैदरगढ़ में दर्ज किये गये, जो विगत दशक से 0.07% की कमी पायी गई एवं न्यूनतम वन (0.10%) के साथ पूरे डलई व सिरौली-गौसपुर में पाए गये वर्ष। 2010-11 की अपेक्षा वर्ष 2020-21 में इन दोनों विकासखण्डों में वन भूमि में 0.07% की वृद्धि देखी गई, जबकि रामनगर विकासखण्ड में कोई वन नहीं पाये गये।

कृषि बेकार भूमि

इस प्रकार की भूमि में उस भूमि को सम्मिलित किया जाता है, जो लगातार 5 वर्ष या उससे से अधिक वर्ष तक कृषि कार्यों के लिए प्रयोग में ना लायी गई हो, तो इस प्रकार की भूमि को कृषि 'बेकार भूमि' कहते हैं। 2010-11 में सर्वाधिक कृषि बेकार भूमि सूरतगंज (16.42%), बंकी (14.42%), व पूरे डलई (11.90%) के साथ क्रमशः प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय स्थान पर रहे, जबकि इसी वर्ष हरख में (1.96%), सिरौली-गौसपुर (2.40%) में न्यूनतम कृषि बेकार भूमि पायी गई। वर्ष 2020-21 में सर्वाधिक कृषि बेकार भूमि सूरतगंज (16.20%) में दर्ज की गई जो 2010-11 की तुलना में 0.22% कम थी, व न्यूनतम कृषि बेकार भूमि हरख (2.04%), सिरौली गौसपुर (2.50%) भूमि पायी गई। सर्वाधिक वृद्धि सूरतगंज (0.22%), बनी कोडर (0.09%), पूरे डलई (0.16%) की कमी देखी गई, जबकि बांकी सभी विकासखण्डों में कृषि बेकार भूमि में वृद्धि हुई है।

वर्तमान परती भूमि

वर्तमान परती भूमि में ऐसे कृषि क्षेत्र को सम्मिलित किया जाता है। इस भू-भाग पर कृषि कार्य संपन्न की जाते थे, लेकिन वर्तमान में अत्यधिक सिंचाई, उर्वरता में कमी आदि कारणों से कृषि कार्य संपन्न नहीं किये गये हों, 'वर्तमान परती भूमि' कहलाती है। वर्तमान परती भूमि की दृष्टि से 2010-11 में 11.19% के साथ सूरतगंज प्रथम स्थान एवं निन्दूरा में 8.85%, एवं देवां 8.41% के साथ क्रमशः दूसरे एवं तीसरे स्थान पर हैं।

त्रिवेदीगंज में 5.00% भूमि के साथ अंतिम पायदान पर है। 2020-21 में 12.28% भूमि के साथ सर्वोच्च स्थान पर रहा, जो 2010-11 से 1.09% की वृद्धि दर्ज की गई, वहीं हरख 4.31% के साथ अंतिम स्थान पर रहा।

अन्य परती

अन्य परती भूमि में ऐसी भूमि को सम्मिलित किया जाता है, जिसे 2 वर्ष से अधिक तथा 5 वर्ष से कम अवधि के लिए परती छोड़ दिया जाता है। इस भूमि को परती छोड़ने के पीछे कई कारण हो सकते हैं। जनपद में अन्य परती भूमि के अंतर्गत 11538 हेक्टेयर का विस्तार है। 2010-11 में सर्वाधिक विस्तार बंकी (9.73%) तथा सूरतगंज 9.52% भूमि के साथ दूसरे स्थान पर रहा, जबकि न्यूनतम परती हरख 1.20% भूमि के साथ प्रथम एवं दूसरे स्थान पर बनी कोडर 3.94% भू-विस्तार के साथ रहा। वर्ष 2020-21 में सूरतगंज 10.59% भूमि के साथ प्रथम व बंकी 10.56% के साथ दूसरे स्थान पर रहा, इसी वर्ष हरख में 0.01% दर्ज की गई। वर्ष 2010-11 की तुलना में 2020-21 में हरख, फतेहपुर, सिद्धौर, दरियाबाद, बनी कोडर एवं पूरे डलई विकासखण्डों में कमी हुई वहीं दूसरी तरफ निन्दूरा, सूरतगंज आदि विकास खण्डों में अन्य परती भूमि में विस्तार देखा गया।

तालिका 3 : विकासखण्डवार भूमि उपयोग का विवरण (क्षेत्रफल प्रतिशत में) 2011-2021

विकासखण्डवार	ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि		कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि		चारागाह		उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल		शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल	
	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21	2010-11	2020-21
निन्दूरा	11.83	10.96	6.03	6.08	10.67	16.68	8.19	8.30	7.98	1.58
फतेहपुर	5.10	5.37	7.89	7.74	4.76	4.79	4.13	4.03	9.16	9.60
सूरतगंज	4.00	4.43	9.89	9.53	4.82	4.85	4.11	3.94	8.07	8.53
रामनगर	2.81	3.43	8.91	8.65	2.92	2.91	4.13	4.03	6.63	7.10
देवां	14.24	13.09	4.36	4.58	5.71	5.76	4.18	4.02	6.68	7.15
बंकी	6.00	6.11	6.31	6.34	6.10	6.08	5.87	5.83	5.30	5.63
हरख	14.18	13.00	6.23	6.25	2.16	2.13	10.79	11.00	6.21	6.68
मसौली	4.32	4.70	3.49	3.80	6.73	6.73	5.63	5.62	4.86	5.35
सिद्धौर	5.83	5.98	5.60	5.70	4.38	4.40	4.84	7.38	7.46	7.92
त्रिवेदीगंज	9.34	8.88	8.23	5.00	7.69	7.64	8.36	8.44	6.29	6.76
हैदरगढ़	6.58	6.53	5.99	6.05	17.22	17.28	5.42	5.35	6.32	6.79
दरियाबाद	3.54	4.04	5.20	5.34	6.67	6.67	5.39	5.34	5.33	5.80
बनी कोडर	5.74	5.87	6.64	6.63	7.05	6.99	6.34	6.33	8.10	8.55
पूरे डलई	4.03	4.45	10.72	10.28	8.26	8.22	18.33	16.33	5.18	5.66
सिरौली, गौसपुर	2.46	3.15	6.68	6.67	4.83	4.85	2.90	3.72	5.95	6.43
योग ग्रामीण	100	100	98.79	98.68	100	100	99.63	99.69	99.55	99.56
योग नगरीय	0.00	0.00	1.21	1.31	0.00	0	0.37	0.30	0.45	0.44
योग जनपद	100	100	100	100	100	100	100	100	100	100

स्रोत - जिला सांख्यिकीय पत्रिका, बाराबंकी, 2012-2022।

ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि

ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि के अंतर्गत सभी प्रकार की भूमि को शामिल किया जाता है; जो कृषि की दृष्टि से या तो अनुपजाऊ भूमि अथवा बेकार है। इस प्रकार की भूमि के अन्तर्गत रेतीली, बंजर, विषम उच्चावचीय धरातल अथवा कंकरीली भूमि को शामिल किया जाता है। इस प्रकार करर भूमि वर्ष 2010-11 में सर्वाधिक देवां (14.24%) में, हरख (14.18%) में, एवं निन्दूरा (11.83%) में पायी गई तथा सिरौली-गौसपुर (2.46%) में सबसे कम भूमि पायी गई। वर्ष 2020-21 में भी देवां (13.09%) का प्रथम स्थान रहा, लेकिन वर्ष 2010-11 की तुलना में 1.15% की कमी देखने को मिली तथा सिरौली-गौसपुर 3.15% सबसे कम भूमि पायी गई, जो 2010-11 की तुलना में 0.69% की में बढ़ोतरी हुई। 2010-11 की अपेक्षा 2020-21 में फतेहपुर, सूरतगंज, रामनगर, बनी कोडर आदि विकास खण्डों में वृद्धि हुई एवं निन्दूरा, हरख, सिद्धौर आदि में कमी हुई।

कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि

इस प्रकार की भूमि में तालाब, वस्ती, नगर, नदी, सड़क, नहर, परिवहन मार्ग, मंदिर-मस्जिद उद्योग आदि में लगी भूमि को सम्मिलित किया जाता है। बाराबंकी जनपद में इस प्रकार की भूमि के अन्तर्गत 62954 हेक्टेयर भूमि आती है। 2010-11 में 10.72% भूमि के साथ पूरे डलई प्रथम स्थान एवं 3.49% भूमि के साथ मसौली अंतिम स्थान पर रहा। वर्ष 2020-21 में पूरे डलई में 10.28% भूमि दर्ज की गई, जो वर्ष 2010-11 की तुलना में 0.44% की कमी के साथ सर्वोच्च स्थान पर रहा तथा मसौली 3.80% के साथ अंतिम स्थान पर रहा, किन्तु 2010-11 की अपेक्षा वृद्धि देखी गई।

चारागाह भूमि

चारागाह भूमियों के अन्तर्गत ऐसी घास भूमि को रखा जाता है, जो पशुओं के चराने के उपयोग में लायी जाती है। इस भूमि पर गाय-भैंस, भेड़-बकरियां, आदि पशुओं के चरने के लिए होती है। यह भूमियाँ पशुओं को चराने के स्थायी चारागाह होते हैं। हैदरगढ़ में चरागाह भूमि का सर्वाधिक विस्तार पाया जाता है एवं हरख में सबसे कम चारागाह देखने को मिले हैं।

उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों की भूमि

उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों का 2010-11 में सर्वाधिक विस्तार पूरे डलई (18.33%) में पाया गया तथा न्यूनतम विस्तार सिरौली-गौसपुर (2.92%) में देखा गया। 2020-21 में भी पूरे डलई 2.00% की कमी के साथ प्रथम स्थान पर रहा तथा सिरौली-गौसपुर 0.18% कमी के साथ अंतिम स्थान पर रहा। निन्दूरा, हरख, सिद्धौर, त्रिवेदीगंज विकास खण्डों में वृद्धि हुई, जबकि फतेहपुर, रामनगर में कमी देखने को मिली। नगरीय क्षेत्र का योगदान 2010-11 में 0.37% था, जो वर्ष 2020-21 में 0.07% की गिरावट के साथ 0.30% देखा गया।

शुद्ध बोया गया क्षेत्र

भूमि के उस सम्पूर्ण भाग को शुद्ध बोया गया क्षेत्र में सम्मिलित किया जाता है, जिस भूमि पर फसल उगाई जाती है। इसके अंतर्गत वर्ष 2020-21 में 262231 हेक्टेयर भू-भाग का उपयोग किया गया है। 2010-11 में सर्वाधिक बोयी गई भूमि के अंतर्गत 9.16% भूमि के साथ फतेहपुर विकास खण्ड प्रथम स्थान पर, व 5.18% भूमि के साथ पूरे डलई अंतिम स्थान पर रहा है। वहीं वर्ष 2020-21 के अनुसार शुद्ध बोये गये क्षेत्र में वृद्धि के साथ 9.60% फतेहपुर प्रथम तथा 1.58% भूमि के साथ निन्दूरा निम्नतम (अंतिम) स्थान पर रहा। वर्ष 2010-11 की अपेक्षा; वर्ष 2020-21 में फतेहपुर, सूरतगंज, रामनगर आदि विकास खण्डों में वृद्धि देखी गई तथा निन्दूरा, मसौली में बोयी गई भूमि में कमी देखी गई।

जनपद में भूमि उपयोग से सम्बन्धित प्रमुख समस्याएँ

अध्ययन क्षेत्र में भूमि उपयोग से सम्बन्धित स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं। तालिका संख्या 2 एवं 3 के आंकड़ों का विश्लेषण से ज्ञात होता है, कि जनपद में अनेक समस्याएँ हैं, जिनमें से यहाँ कुछ का उल्लेख किया जा रहा है-

1. जनपद के रामनगर, बंकी, पूरे डलई एवं मसौली जैसे विकासखण्डों में वन क्षेत्र नगण्य या बहुत कम है, जिससे पर्यावरणीय असंतुलन और जैव विविधता में कमी की समस्या उत्पन्न हो रही है।
2. अध्ययन क्षेत्र में कृषि योग्य बंजर भूमि का विस्तार मसौली, त्रिवेदीगंज और पूरे डलई विकासखण्डों में हिस्सेदारी बढ़ना भूमि सुधार एवं प्रबंधन की कमजोरी का संकेत करता है।
3. कृषि भूमि पर गैर-कृषि भूमि उपयोग का दबाव हैदरगढ़, त्रिवेदीगंज और बंकी विकासखण्डों में आवासीय व अन्य कार्यों में बढ़ा है, जिस कारण कृषि क्षेत्र लगातार सिमट रहा है।
4. जनपद के रामनगर, मसौली और सिरौली गौसपुर विकासखण्डों में चारागाह भूमि का प्रतिशत घटता हुआ पाया गया, जिससे पशुपालन प्रभावित हो रहा है।
5. पूरे डलई, हैदरगढ़ तथा हरख विकासखण्डों में उद्यानों, वृक्षों एवं झाड़ियों के क्षेत्र में कमी पर्यावरणीय असंतुलन और जैव विविधता ह्रास को दर्शाती है।
6. शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल में असमान परिवर्तन के कारण बंकी, देवा एवं त्रिवेदीगंज विकासखण्डों में वृद्धि/कमी की प्रवृत्ति विषम है, जिससे कृषि विकास संतुलित नहीं हो पा रहा है।

समाधान एवं सुझाव

1. कम वन क्षेत्र वाले विकासखण्ड रामनगर, बंकी, पूरे डेवई, मसौली में सामाजिक वानिकी, पंचायत-स्तरीय वृक्षारोपण और नहर तथा सड़क किनारे हरित पट्टी का विकास किया जाये।
2. मसौली, त्रिवेदीगंज, पूरे डलई में कृषि योग्य बंजर भूमि को नियंत्रित करने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम, सूक्ष्म सिंचाई, जैव उर्वरक एवं भूमि का समतलीकरण करना अति आवश्यक है।
3. हैदरगढ़, त्रिवेदीगंज तथा बंकी विकासखण्डों में कृषि भूमि पर गैर-कृषि भूमि के दबाव को कम करने के लिए भूमि उपयोग नियोजन एवं कृषि भूमि संरक्षण नीति की जरूरत है।
4. रामनगर, मसौली, सिरौली गौसपुर में चारागाह भूमि में हो रही कमी को दूर करने के लिए चारागाह संरक्षण एवं सामुदायिक चारागाह का विकास करना होगा।
5. शुद्ध बोये गये क्षेत्रफल में असमानता को कम करने के लिए बंकी, देवा, त्रिवेदीगंज विकासखण्ड में सिंचाई विस्तार, बहुफसली प्रणाली तथा कृषि को लाभकारी बनाना आवश्यक है।

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध पत्र बाराबंकी जनपद में बदलते भूमि उपयोग के स्वरूप को अनेक कारकों द्वारा प्रभावित किया गया है, जिनमें तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या को प्रमुख माना जा सकता है। इसमें वर्ष 2010-11 व वर्ष 2020-21 का तुलनात्मक अध्ययन करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि वर्तमान वर्ष (2020-21) में कुल प्रतिवेदित क्षेत्र 388587 हेक्टेयर भूमि है। जिसमें वन भूमि (1.53%), कृष्य बेकार भूमि (2.07%), वर्तमान परती (6.46%), अन्य परती (2.97%), ऊसर एवं कृषि के अयोग्य भूमि (0.93%), कृषि के अतिरिक्त अन्य उपयोग की भूमि (16.20%), चरागाह (0.40%), उद्यानों वृक्षों एवं झाड़ियों का क्षेत्रफल (1.94%), तथा शुद्ध बोया गया क्षेत्रफल (67.48%) भूमि का वितरण पाया गया है। अन्ततः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि जनपद के विभिन्न विकासखंडों में भूमि उपयोग में विभिन्नताएं पायी गई अतः भूमि उपयोग में एकरूपता नहीं पायी जाती है। जनपद में भूमि उपयोग में हुए परिवर्तनों में विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, भौतिक एवं सांस्कृतिक कारकों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है।

सन्दर्भ सूची :-

1. सिंह, सागर एवं कुमार, प्रणव वर्मा, (2024) : प्रयागराज जनपद (उ.प्र.) में भूमि उपयोग प्रतिरूप का अध्ययन, वाल्यूम-12, इश्यू-2, पृष्ठ सं. 131-135 ।
2. कुमार, शैलेन्द्र एवं पटेल, शुभम (2022) : उत्तर प्रदेश में बदलते भूमि उपयोग प्रतिरूप का कृषि पर प्रभाव : एक भौगोलिक अध्ययन, आई.जे.एन.आर.डी, वॉल्यूम 7, पृष्ठ सं. 1573-1578 ।
3. जिला सांख्यिकीय पत्रिका, बाराबंकी, 2022 ।
4. कुमार, अजीत, (2014) : वैशाली जिले में भूमि उपयोग का वर्तमान प्रतिरूप, आई.जे.आर.ए.आर., वाल्यूम 1, इश्यू- 1, पृष्ठ सं. 38-41 ।
5. राय, अल्का (2014) : संविकास के सन्दर्भ में भूमि उपयोग नियोजन, गोरखपुर जनपद का एक प्रतीक अध्ययन, पृष्ठ सं.132-148 ।
6. पाठक, रमापति (2011) : उन्नाव जनपद में कृषि भूमि उपयोग एवं पोषण : एक भौगोलिक अध्ययन पृष्ठ सं. 50-64।
7. सिंह, संदीप कुमार एवं प्रसाद ओंकार (2011) : भूमि उपयोग में परिवर्तन एवं ग्रामीण विकास : बड़ागांव विकासखण्ड का एक भौगोलिक अध्ययन, उ०भा०भू०प०, वाल्यूम - 4(1), पृष्ठ सं. 47-52।
8. जिला सांख्यिकीय पत्रिका, बाराबंकी 2012 ।
9. सिंह, तारकेश्वर एवं दीक्षित, अनुपमा (2006) : जौनपुर में भूमि उपयोग प्रतिरूप एवं फसलोत्पादन, भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, अंक 10 (1), पृष्ठ सं. 66-70।
10. भट्टाचार्य, सुदीपा, (1999) : लैंडफॉर्म एंड रिलेटेड लैंड यूज पैटर्न इन द खरसूती बेसिन, बिहार पृष्ठ सं. 72-76 ।

उ0प्र0 पंचायती राज व्यवस्था में महिला सहभागिता और शासन की प्रभावशीलता (महाराजगंज जनपद के विकास खण्डों के संदर्भ में समाजशास्त्रीय अध्ययन)

विजय शंकर सिंह*
प्रो. धर्मेन्द्र कुमार सोनकर**

सारांश

पंचायती राज व्यवस्था भारत में लोकतंत्र की आधारशिला मानी जाती है, जिसका उद्देश्य शासन को जनसाधारण के निकट लाना तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकास को सुनिश्चित करना है। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत (बाद में कई राज्यों में 50 प्रतिशत) आरक्षण प्रदान किया गया, जिससे ग्रामीण शासन में महिलाओं की भागीदारी में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। उत्तर प्रदेश जैसे विशाल और सामाजिक रूप से विविध राज्य में महिला सहभागिता ने स्थानीय शासन की संरचना और कार्यप्रणाली को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है।

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के महाराजगंज जनपद के विकास खण्डों के संदर्भ में पंचायती राज व्यवस्था में महिला जनप्रतिनिधियों की सहभागिता तथा उससे शासन की प्रभावशीलता पर पड़ने वाले प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन का स्रोत प्राथमिक द्वितीयक स्रोतों के आधार पर किया जा रहा है। जिसमें विकास खण्डों में से दैव निदर्शन पद्धति द्वारा 'सदर' और 'निचलौल' विकास खण्ड का चयन किया गया है। दोनों विकास खण्ड सदर और निचलौल विकास खण्डों के जनसंख्या से 150-150 'महिला जनप्रतिनिधियों' का 'उद्देश्यपूर्ण निदर्शन' के माध्यम से चयन कर कुल 300 महिला जनप्रतिनिधियों उत्तरदाताओं का चयन शोध हेतु किया जा रहा है।

अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि महिला सहभागिता ने पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, सामाजिक न्याय और समावेशी विकास को बढ़ावा दिया है, यद्यपि सामाजिक-सांस्कृतिक बाधाएँ, पितृसत्तात्मक सोच और प्रशासनिक सीमाएँ अभी भी मौजूद हैं।

की-वर्ड्स : पंचायती राज, महिला सहभागिता, शासन की प्रभावशीलता, उत्तर प्रदेश, महाराजगंज, ग्रामीण शासन

1. भूमिका

भारत में लोकतांत्रिक शासन की सफलता का आधार केवल राष्ट्रीय और प्रांतीय स्तर पर सीमित नहीं है, बल्कि इसका वास्तविक स्वरूप स्थानीय स्वशासन संस्थाओं में दिखाई देता है। पंचायती राज व्यवस्था ग्रामीण समाज को राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से सशक्त बनाने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। स्वतंत्रता के बाद यह अनुभव किया गया कि जब तक सत्ता और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया को गांव स्तर तक नहीं पहुँचाया जाएगा, तब तक लोकतंत्र सार्थक नहीं हो सकता। इसी सोच के परिणामस्वरूप पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया।¹

महिलाएँ भारतीय समाज की लगभग आधी आबादी का प्रतिनिधित्व करती हैं, किंतु ऐतिहासिक रूप से वे राजनीति और प्रशासन से वंचित रही हैं। पंचायती राज व्यवस्था में आरक्षण ने महिलाओं को पहली बार व्यापक स्तर पर सार्वजनिक जीवन में प्रवेश का अवसर प्रदान किया। उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में, जहाँ सामाजिक रूढ़ियाँ और लैंगिक असमानताएँ गहरी हैं, महिला सहभागिता का प्रभाव विशेष रूप से अध्ययन योग्य है। महाराजगंज जनपद, जो सामाजिक-आर्थिक दृष्टि से पिछड़े क्षेत्रों में गिना जाता है, इस अध्ययन के लिए एक उपयुक्त क्षेत्र प्रदान करता है।

2. पंचायती राज व्यवस्था का विकास और महिला आरक्षण

भारत में पंचायती राज की अवधारणा प्राचीन काल से विद्यमान रही है, किंतु आधुनिक स्वरूप स्वतंत्रता के बाद विकसित हुआ। बलवंत राय मेहता समिति (1957) और अशोक मेहता समिति (1978) ने स्थानीय स्वशासन को मजबूत करने पर बल दिया।² अंततः 73वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक मान्यता दी गई। इस संशोधन का सबसे क्रांतिकारी पहलू महिलाओं के लिए आरक्षण था। इसका उद्देश्य केवल संख्या बढ़ाना नहीं, बल्कि महिलाओं को निर्णय-निर्माण प्रक्रिया में सक्रिय भागीदार बनाना था। उत्तर प्रदेश सरकार ने महिलाओं के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण लागू कर महिला सहभागिता को और अधिक सशक्त बनाया।³

* शोध-छात्र, समाजशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू स्मारक पीजी कॉलेज, महाराजगंज।

** शोध-निदेशक, समाजशास्त्र विभाग, जवाहरलाल नेहरू स्मारक पीजी कॉलेज, महाराजगंज।

जिसे साक्षात्कार के माध्यम से निम्न सारणी के अन्तर्गत समझा जा सकता है-

2.1 क्या पंचायती राज में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत पद आरक्षित है

भारतीय संविधान संशोधन 73वें व 74वें में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है जिसके तहत पंचायत राज व्यवस्था में महिलाओं को 33 प्रतिशत सीट आरक्षित की गयी है। 33 प्रतिशत सीट आरक्षित होने से महिलाएं पंचायती राज में ग्राम पंचायत, जिला पंचायत व पंचायत समिति के माध्यम से चयनित होकर ग्राम विकास, स्वास्थ्य, शिक्षा, पेय जल, स्वच्छता आदि जैसी योजनाओं को क्रियान्वित कर रही हैं।

तालिका 2.1

आरक्षित	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	225	75
नहीं	75	25
योग	300	100

उपरोक्त तालिका में साक्षात्कार के माध्यम से पंचायती राज में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत पद आरक्षित का वर्गीकरण किया जा रहा है जिसमें 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने सकारात्मक जवाब देते हुए बताया कि 33 प्रतिशत पद आरक्षित का लाभ प्राप्त होता है, वहीं 25 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस सम्बन्ध में नकारात्मक स्वर में जवाब दिया।

उपरोक्त तालिका के विश्लेषण करने के उपरांत ज्यादातर 75 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपनी स्वीकृति में बताया है कि महिला जनप्रति को 33 प्रतिशत आरक्षण का लाभ प्राप्त होता है जिससे उनको चुनावों लड़ने में सीटों का आवंटन आसानी से प्राप्त हो जाता है और चुनाव में भाग ले पाती हैं।

3. महिला सहभागिता का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

समाजशास्त्रीय दृष्टि से महिला सहभागिता केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व का प्रश्न नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, शक्ति संबंधों और लैंगिक भूमिकाओं में परिवर्तन का संकेतक है। महिला जनप्रतिनिधियाँ पारंपरिक घरेलू भूमिकाओं से बाहर निकलकर सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करती हैं, जिससे सामाजिक चेतना में परिवर्तन आता है।⁴ महाराजगंज जनपद के विकास खण्डों में यह देखा गया है कि महिला प्रधान, पंचायत सदस्य और ब्लॉक स्तर की प्रतिनिधियाँ शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता और महिला-बाल कल्याण जैसे मुद्दों को अधिक प्राथमिकता देती हैं। इससे शासन की सामाजिक संवेदनशीलता में वृद्धि होती है।

4. महिला सहभागिता और शासन की प्रभावशीलता

शासन की प्रभावशीलता का अर्थ है—नीतियों का सफल क्रियान्वयन, संसाधनों का उचित उपयोग, पारदर्शिता और जन-संतोष। महिला सहभागिता ने इन सभी आयामों पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। महिला जनप्रतिनिधियों की उपस्थिति से पंचायत बैठकों में नियमितता बढ़ी है, विकास योजनाओं के चयन में सामाजिक जरूरतों को महत्व मिला है और भ्रष्टाचार पर कुछ हद तक अंकुश लगा है।⁵ महाराजगंज के कई विकास खण्डों में महिला प्रधानों द्वारा स्वच्छ भारत मिशन, पेयजल योजनाओं और आंगनवाड़ी सेवाओं के क्रियान्वयन में विशेष रुचि दिखाई गई है।

पंचायत के निर्णय लेने की प्रक्रिया में महिला प्रतिनिधियों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। वे ग्राम सभा और पंचायत बैठकों में भाग लेकर विकास योजनाओं, सामाजिक कल्याण, महिला एवं बाल हितों से जुड़े मुद्दों पर अपने विचार प्रस्तुत करती हैं। उनकी सहभागिता से निर्णय प्रक्रिया अधिक समावेशी, संवेदनशील और जनोन्मुखी बनती है।

पंचायत के निर्णय लेने में महिला प्रतिनिधि भूमिका

तालिका 4.1

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
पूर्ण रूप से	198	66
आंशिक रूप से	72	24
बिल्कुल नहीं	30	10
योग	300	100

उपरोक्त तालिका में साक्षात्कार के आधार पर महिला पंचायत प्रतिनिधि से पंचायत में निर्णय लेने की भूमिका का वर्गीकरण किया जा रहा है जिसमें 66 प्रतिशत महिला प्रतिनिधि ने पूर्ण रूप से पंचायत में निर्णय लेना बताया है, 24 प्रतिशत ने आंशिक रूप से लेना बताकर स्वीकृति प्रदान की वहीं 10 प्रतिशत ने बिल्कुल नहीं कह कर जवाब दिया। इससे यह स्पष्ट होता है कि ज्यादातर महिला जनप्रति पंचायत में पूर्णरूप से निर्णय लेना बताया है।

5. निर्णय-निर्माण और पारदर्शिता

महिला सहभागिता ने निर्णय-निर्माण प्रक्रिया को अधिक सहभागी बनाया है। महिलाएँ सामूहिक चर्चा, सहमति और संवाद पर बल देती हैं, जिससे पंचायतों में लोकतांत्रिक संस्कृति मजबूत होती है।⁶ हालाँकि कई स्थानों पर “प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व” की समस्या भी देखी जाती है, जहाँ महिला प्रतिनिधि के स्थान पर उनके पति या परिवार के पुरुष सदस्य निर्णय लेते हैं। फिर भी, समय के साथ कई महिलाएँ इस स्थिति से बाहर निकलकर स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगी हैं।

क्या पंचायत में निर्णय लेते समय सभी सदस्यों (विशेषकर महिला प्रतिनिधियों) की राय को समान महत्व दिया जाता है?

तालिका 5.1

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	150	50
नहीं	95	31.66
कभी-कभी	55	18.33
योग	300	100

उपरोक्त तालिका के अन्तर्गत पंचायत में निर्णय लेते समय महिला प्रतिनिधि के राय को समान महत्व देने का वर्गीकरण करने में 50 महिला उत्तरदाता ने सकारात्मक जवाब दिया, वहीं 31.66 प्रतिशत महिला उत्तरदाता ने नकारात्मक जवाब दिया जबकि 18.33 प्रतिशत ने कभी-कभी कहकर जवाब दिया।

6. सामाजिक न्याय और समावेशी विकास

महिला जनप्रतिनिधियाँ सामाजिक न्याय के प्रश्नों—जैसे दलितों, पिछड़ों, महिलाओं और बच्चों के अधिकार—के प्रति अधिक संवेदनशील पाई गई हैं। महाराजगंज जनपद में अनुसूचित जाति और अल्पसंख्यक महिलाओं की भागीदारी ने पंचायतों में हाशिए के वर्गों की आवाज को मजबूती दी है।⁷ इससे शासन की प्रभावशीलता केवल आर्थिक विकास तक सीमित न रहकर सामाजिक समावेशन तक विस्तारित हुई है।

क्या महिला प्रतिनिधि सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास से जुड़ी योजनाओं (जैसे आवास, पेंशन, शिक्षा, स्वास्थ्य) के चयन और क्रियान्वयन में सक्रिय भूमिका निभाती हैं?

तालिका 6.1

प्रतिक्रिया	आवृत्ति	प्रतिशत
हमेशा	155	51.67
कभी-कभी	85	28.33
कभी-नहीं	60	20.00
योग	300	100

उपरोक्त तालिका के अन्तर्गत साक्षात्कार के माध्यम से महिला प्रतिनिधि से सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास से जुड़ी योजनाओं का वर्गीकरण किया जा रहा है जिसमें 51.67 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बताया कि सामाजिक न्याय एवं समावेशी विकास से जुड़ी योजनाओं (जैसे आवास, पेंशन, शिक्षा, स्वास्थ्य) पर सक्रिय भूमिका अदा करती है जबकि 28.33 प्रतिशत ने इस संदर्भ में कभी-कभी सक्रिय भूमिका निभाना बताया है और 20 प्रतिशत महिला उत्तरदाता ने कभी-नहीं निभाना बताकर स्वीकृति प्रदान की है।

7. चुनौतियाँ और सीमाएँ

यद्यपि पंचायती राज व्यवस्था में महिला सहभागिता ने स्थानीय शासन को अधिक समावेशी, संवेदनशील और जनोन्मुखी बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, फिर भी इसके समक्ष अनेक व्यावहारिक चुनौतियाँ और सीमाएँ विद्यमान हैं। ग्रामीण समाज में व्याप्त पितृसत्तात्मक मानसिकता आज भी महिला जनप्रतिनिधियों के स्वतंत्र निर्णय-निर्माण में बाधा उत्पन्न करती है, जहाँ कई बार उन्हें केवल औपचारिक प्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है। शिक्षा, प्रशासनिक ज्ञान और अनुभव की कमी के कारण अनेक महिलाएँ योजनाओं, नियमों और प्रक्रियाओं को प्रभावी ढंग से समझ और लागू नहीं कर पातीं। इसके अतिरिक्त प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व की समस्या भी गंभीर है, जिसमें पति या परिवार के पुरुष सदस्य वास्तविक सत्ता का प्रयोग करते हैं। साथ ही संसाधनों, सूचना और तकनीकी ज्ञान तक सीमित पहुँच के कारण महिला प्रतिनिधियों की सक्रियता और प्रभावशीलता प्रभावित होती है। ये सभी कारक मिलकर महिला सहभागिता की संभावनाओं को सीमित करते हैं, जिससे शासन में उनकी वास्तविक और स्वतंत्र भूमिका पूरी तरह साकार नहीं हो पाती।⁸

8. महाराजगंज जनपद का विशेष संदर्भ

महाराजगंज जनपद के विकास खण्डों में किए गए अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि जहाँ महिलाओं को प्रशिक्षण, प्रशासनिक सहयोग और सामाजिक समर्थन मिला, वहाँ पंचायतों का प्रदर्शन अपेक्षाकृत बेहतर रहा। महिला नेतृत्व ने स्थानीय समस्याओं को प्राथमिकता दी और शासन को अधिक उत्तरदायी बनाया।⁹

9. सुझाव

महिला सहभागिता को और अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ ठोस एवं व्यावहारिक सुझाव आवश्यक हैं। सबसे पहले, महिला जनप्रतिनिधियों के लिए नियमित और सतत प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए, जिससे वे प्रशासनिक प्रक्रियाओं, सरकारी योजनाओं, वित्तीय प्रबंधन और निर्णय-निर्माण से संबंधित ज्ञान एवं कौशल प्राप्त कर सकें। इसके साथ ही प्रशासनिक स्तर पर लैंगिक संवेदनशीलता बढ़ाना आवश्यक है, ताकि अधिकारी और कर्मचारी महिला प्रतिनिधियों के साथ सहयोगात्मक एवं सम्मानजनक व्यवहार करें। प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व की समस्या पर नियंत्रण हेतु कानूनी प्रावधानों के प्रभावी क्रियान्वयन के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता भी बढ़ाई जानी चाहिए, जिससे महिलाएँ स्वयं अपने अधिकारों और कर्तव्यों का निर्वहन कर सकें। इसके अतिरिक्त, पंचायतों को महिला नेटवर्कों और स्वयं सहायता समूहों से जोड़ने से महिलाओं की सामूहिक शक्ति, आत्मविश्वास और नेतृत्व क्षमता में वृद्धि होगी, जिससे स्थानीय शासन अधिक पारदर्शी, उत्तरदायी और समावेशी बन सकेगा।

10. निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि उत्तर प्रदेश की पंचायती राज व्यवस्था में महिला सहभागिता ने स्थानीय शासन की प्रभावशीलता को न केवल सुदृढ़ किया है, बल्कि उसे अधिक लोकतांत्रिक, पारदर्शी और जनोन्मुखी स्वरूप भी प्रदान किया है। महाराजगंज जनपद के विभिन्न विकास खण्डों के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि महिला जनप्रतिनिधियों पंचायतों के कार्यों में सक्रिय भूमिका निभाते हुए विकास योजनाओं के क्रियान्वयन, सामाजिक न्याय की स्थापना, महिला-बाल कल्याण, शिक्षा, स्वास्थ्य और स्वच्छता जैसे विषयों पर विशेष संवेदनशीलता के साथ कार्य कर रही हैं। उनकी भागीदारी से निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में विविध दृष्टिकोण शामिल हुए हैं, जिससे शासन अधिक उत्तरदायी और समावेशी बना है। यद्यपि पितृसत्तात्मक मानसिकता, प्रॉक्सी प्रतिनिधित्व, प्रशासनिक अनुभव की कमी तथा संसाधनों तक सीमित पहुँच जैसी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, तथापि निरंतर प्रशिक्षण, जागरूकता और संस्थागत समर्थन के माध्यम से इन बाधाओं को क्रमशः कम किया जा सकता है। इस प्रकार, महिला सहभागिता केवल संवैधानिक प्रावधानों की पूर्ति तक सीमित न रहकर जमीनी स्तर पर लोकतंत्र को मजबूत करने, सामाजिक परिवर्तन को गति देने और सुशासन की स्थापना में एक निर्णायक एवं दूरगामी भूमिका निभा रही है।

संदर्भ

1. भारत का संविधान, 73वाँ संविधान संशोधन अधिनियम, 1992.
2. Mehta, B. R., *Report of the Study Team on Panchayati Raj*, Government of India, 1957.
3. Government of Uttar Pradesh, *Panchayati Raj Act and Amendments*, Lucknow.
4. Desai, N., *Women and Governance in India*, Oxford University Press, 2002.
5. Mathew, G., *Panchayati Raj in India*, Concept Publishing, 1994.
6. UNDP, *Women's Political Participation and Governance*, 2010.
7. Dreze, J. & Sen, A., *India: Development and Participation*, Oxford, 2002.
8. Agarwal, B., *Gender and Governance*, Cambridge University Press, 2010.
9. जिला सांख्यिकी पत्रिका, महाराजगंज जनपद, उत्तर प्रदेश.

आयुष्मान भारत योजना का गरीबों पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

अवधेश*

प्रो. ध्रुवभूषण सिंह**

सारांश

यह अध्ययन आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना के तहत भारत के गरीब एवं वंचित वर्गों पर सामाजिक, आर्थिक तथा स्वास्थ्य संबंधी प्रभावों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण प्रस्तुत है। अध्ययन का उद्देश्य यह समझना है कि यह योजना किस प्रकार स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच बढ़ाने, जेब से होने वाले स्वास्थ्य व्यय को कम करने तथा स्वास्थ्य-गरीबी चक्र को कमजोर करने में सहायक रही है। द्वितीयक आँकड़ों—जैसे NFHS, NSSO, नीति आयोग तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्टों—के आधार पर यह पाया गया कि योजना के लागू होने के बाद गंभीर बीमारियों के उपचार में निर्धन परिवारों की भागीदारी बढ़ोत्तरी हुई है और परिवार में होने वाले स्वास्थ्य व्यय में उल्लेखनीय कमी आई है, विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग और संघर्षरत महिलाओं के मध्य राहत देखा गया है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह योजना स्वास्थ्य में सामाजिक न्याय, समावेशन और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को सुदृढ़ करती है। यद्यपि कवरेज, आधारभूत ढाँचे और क्रियान्वयन से जुड़ी कुछ चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, फिर भी यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि आयुष्मान भारत योजना भारत में निर्धन परिवारों की स्वास्थ्य सुरक्षा सुनिश्चित करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण और परिवर्तनकारी पहल सिद्ध साबित हुई है।

की वर्ड- आयुष्मान भारत योजना, प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PM-JAY), स्वास्थ्य असमानता, गरीबी, सामाजिक न्याय, स्वास्थ्य सुरक्षा, व्यय, ग्रामीण स्वास्थ्य, वंचित वर्ग, ।

1. प्रस्तावना

स्वास्थ्य किसी भी समाज की एक मूलभूत सामाजिक संस्था है, जो केवल व्यक्ति के शारीरिक कल्याण तक सीमित नहीं रहती, बल्कि उसकी आर्थिक उत्पादकता, सामाजिक गतिशीलता तथा मानव विकास सूचकांक (HDI) को भी गहराई से प्रभावित करती है। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से स्वास्थ्य और बीमारी को केवल जैविक परिघटना के रूप में नहीं देखा जाता, बल्कि इन्हें वर्ग, जाति, लिंग, शिक्षा, आय और क्षेत्रीय असमानताओं से जुड़ी सामाजिक संरचनाओं के संदर्भ में समझा जाता है। भारत जैसे विकासशील देश में यह असमानताएँ और भी स्पष्ट रूप से दिखाई देती हैं, जहाँ ग्रामीण, निर्धन, अनुसूचित जाति-जनजाति तथा महिलाएँ स्वास्थ्य सुविधाओं से अपेक्षाकृत अधिक वंचित रही हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के अनुसार, ग्रामीण भारत में आज भी स्वास्थ्य सुविधाओं की उपलब्धता और गुणवत्ता शहरी क्षेत्रों की तुलना में कम है, जिससे सामाजिक असमानताएँ और गहरी होती हैं।¹

भारत में लंबे समय तक स्वास्थ्य सेवाएँ मुख्यतः बाज़ार-आधारित रहीं, जिसके कारण गरीब और वंचित वर्गों को गंभीर बीमारियों के इलाज के लिए या तो भारी कर्ज़ लेना पड़ता है अथवा वे आर्थिक कमी के कारण इलाज से वंचित रहना पड़ता है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) की रिपोर्ट के अनुसार, भारत में लगभग 55-60 प्रतिशत परिवार स्वास्थ्य पर होने वाले अत्यधिक खर्च के कारण गरीबी रेखा से नीचे चले जाते हैं।² विश्व बैंक की एक रिपोर्ट भी यह दर्शाती है कि स्वास्थ्य व्यय भारत में गरीबी के प्रमुख कारणों में से एक है। इसी सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि में वर्ष 2018 में आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PM-JAY) की शुरुआत की गई, इस योजना की लक्ष्य आर्थिक रूप से कमजोर लोगों (BPL) को स्वास्थ्य बीमा उपलब्ध कराना है। जिसके माध्यम से वाले प्रत्येक परिवारों को स्वास्थ्य बीमा चिकित्सा हेतु 5 लाख तक की राशि कैशरहित निःशुल्क स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान कराया जाता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह योजना स्वास्थ्य में सामाजिक न्याय, समानता और समावेशन को बढ़ावा देने वाला एक ऐतिहासिक हस्तक्षेप मानी जाती है, जिसने कल्याणकारी राज्य की भूमिका को सुदृढ़ किया है।³

2. आयुष्मान भारत योजना : संरचना और उद्देश्य

(क) स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्र (Health & Wellness Centres)

आयुष्मान भारत योजना का पहला स्तंभ "स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्र" है, जिसका उद्देश्य देश की प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं को सुदृढ़ और व्यापक बनाना है। इन केंद्रों के माध्यम से केवल उपचारात्मक सेवाएँ ही नहीं, बल्कि निवारक,

* शोध-छात्र, समाजशास्त्र विभाग, शहीद हीरा सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धानापुर, चंदौली, उत्तर प्रदेश।

** शोध-निदेशक, समाजशास्त्र विभाग, शहीद हीरा सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, धानापुर, चंदौली, उत्तर प्रदेश।

संवर्धनात्मक और समग्र स्वास्थ्य देखभाल पर विशेष बल दिया गया है। इसके अंतर्गत मातृ एवं शिशु स्वास्थ्य सेवाएँ, टीकाकरण, परिवार नियोजन, पोषण परामर्श, बुजुर्गों की देखभाल, मानसिक स्वास्थ्य सेवाएँ तथा गैर-संचारी रोगों (जैसे मधुमेह, उच्च रक्तचाप, कैंसर की प्रारंभिक जाँच) को शामिल किया गया है। नीति आयोग के अनुसार, स्वास्थ्य एवं परिवार केन्द्र ग्रामीण एवं दूरस्थ क्षेत्रों में स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच बढ़ाकर प्राथमिक स्तर पर ही बीमारियों की पहचान और उपचार सुनिश्चित करते हैं, जिससे द्वितीयक और तृतीयक स्वास्थ्य संस्थानों पर दबाव कम होता है।⁴ समाजशास्त्रीय दृष्टि से ये केंद्र स्वास्थ्य में समानता और सामुदायिक सहभागिता को बढ़ावा देने का एक महत्वपूर्ण माध्यम हैं।

(ख) प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PM-JAY)

आयुष्मान भारत का दूसरा और सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ 'प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PM-JAY)' है, जिसे विश्व की सबसे बड़ी सरकारी स्वास्थ्य बीमा योजना माना जाता है। इसके अंतर्गत पात्र प्रत्येक परिवार को प्रति वर्ष ₹5 लाख तक का निःशुल्क इलाज प्रदान किया जाता है, जिसमें द्वितीयक एवं तृतीयक स्तर की स्वास्थ्य सेवाएँ शामिल हैं। यह योजना सामाजिक-आर्थिक जाति जनगणना के आधार पर लगभग 10.74 करोड़ गरीब एवं वंचित परिवारों को कवर करती है, जिससे लगभग 50 करोड़ जनसंख्या को स्वास्थ्य सुरक्षा प्राप्त होती है।⁵ इस योजना के अंतर्गत 1,600 से अधिक उपचार पैकेज उपलब्ध हैं, जिनमें सर्जरी, दवाइयाँ, जाँच, अस्पताल में भर्ती, पूर्व एवं पश्चात उपचार की सुविधाएँ शामिल हैं। वर्तमान में 25,000 से अधिक सरकारी एवं निजी अस्पताल इस योजना से सूचीबद्ध हैं।⁶ समाजशास्त्रीय रूप से यह योजना स्वास्थ्य पर होने वाले निजी खर्च को कम कर गरीब वर्ग को आर्थिक संकट से बचाने, स्वास्थ्य में सामाजिक न्याय स्थापित करने तथा कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को सुदृढ़ करने की दिशा में एक निर्णायक कदम मानी जाती है।

3. अध्ययन के उद्देश्य

1. आयुष्मान भारत योजना का गरीब वर्ग की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच पर प्रभाव का अध्ययन करना।
2. गरीब परिवारों के स्वास्थ्य संबंधी जेब खर्च में आए परिवर्तन का विश्लेषण करना।
3. जाति, वर्ग और लिंग के संदर्भ में योजना के प्रभाव का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना।
4. ग्रामीण एवं शहरी गरीबों पर योजना के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव का अध्ययन करना।
5. स्वास्थ्य-गरीबी चक्र पर योजना के प्रभाव का विश्लेषण करना।
6. योजना की सीमाओं, चुनौतियों और सुधार की संभावनाओं का अध्ययन करना।

4. अनुसंधान पद्धति

यह अध्ययन मुख्यतः द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। इसके अंतर्गत NSSO, NFHS-4 एवं NFHS-5, नीति आयोग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, विश्व बैंक और WHO की रिपोर्टों का उपयोग किया गया है। समाजशास्त्रीय विश्लेषण हेतु वर्ग, जाति, लिंग और क्षेत्रीय आधार को प्रमुख इकाई माना गया है।

साहित्यिक समीक्षा

- कुमार एवं जैन (2020) के अनुसार PM-JAY के बाद गरीब परिवारों में गंभीर बीमारियों के लिए अस्पताल में भर्ती की दर बढ़ी है और जेब-से-खर्च में उल्लेखनीय कमी आई है, जिससे आर्थिक दबाव कम हुआ है।⁷
- शर्मा एवं वर्मा (2021) ने ग्रामीण-शहरी अंतर को रेखांकित करते हुए पाया कि ग्रामीण क्षेत्रों में HWCs की भूमिका अधिक प्रभावी रही है, जबकि शहरी गरीबों के लिए निजी अस्पतालों की भागीदारी महत्वपूर्ण बनी हुई है।⁸
- दत्त एवं चौधरी (2022) के अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि योजना ने अनुसूचित जाति-जनजाति, पिछड़े वर्गों और महिलाओं के स्वास्थ्य व्यवहार एवं इलाज की पहुँच में सुधार कर सामाजिक असमानताओं को कम किया है।⁹
- वहीं नायर एवं राज (2023) के अनुसार योजना से स्वास्थ्य जागरूकता और समय पर इलाज की प्रवृत्ति बढ़ी है, जो सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन का संकेत है।¹⁰

5. भारत में स्वास्थ्य असमानता : एक समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

भारत में आयुष्मान भारत योजना के क्रियान्वयन से पूर्व स्वास्थ्य व्यवस्था में गहरी सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ विद्यमान थीं, जिनका प्रभाव विशेष रूप से निर्धन, ग्रामीण और वंचित वर्गों पर पड़ता था। समाजशास्त्रीय दृष्टि से स्वास्थ्य सेवाओं की पहुँच वर्ग, आय, शिक्षा और क्षेत्रीय विषमताओं से गहराई से जुड़ी हुई थी। निजी स्वास्थ्य क्षेत्र के प्रभुत्व और सार्वजनिक स्वास्थ्य अवसरचना की कमजोरी के कारण गरीब परिवारों को या तो इलाज से वंचित रहना पड़ता था अथवा साहूकारों और अनौपचारिक स्रोतों से कर्ज़ लेकर उपचार कराना पड़ता था। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (NSSO) के आँकड़ों के अनुसार ग्रामीण गरीब परिवारों के कुल स्वास्थ्य व्यय का 70 प्रतिशत से अधिक हिस्सा जेब से होने वाला खर्च था, जिसने उन्हें आर्थिक रूप से और अधिक असुरक्षित बना दिया।¹¹ यह स्थिति एक दुष्चक्र को जन्म देती थी, जिसे "स्वास्थ्य-गरीबी चक्र" कहा जाता है, जहाँ बीमारी के कारण आय घटती है, कर्ज़ बढ़ता है और गरीबी गहराती जाती है, तथा गरीबी के कारण पोषण, स्वच्छता और समय पर इलाज के अभाव से बीमारी की संभावना और बढ़ जाती है। इस प्रकार,

आयुष्मान भारत योजना से पूर्व भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था सामाजिक न्याय और समानता के सिद्धांतों को पूर्णतः साकार करने में असफल रही थी, जिससे स्वास्थ्य असमानता एक गंभीर समाजशास्त्रीय समस्या के रूप में उभरकर सामने आई।

6. आयुष्मान भारत योजना का गरीबों पर प्रभाव

(क) स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में वृद्धि

आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PM-JAY) के क्रियान्वयन के पश्चात भारत में गरीब एवं वंचित वर्गों की स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच में उल्लेखनीय वृद्धि दर्ज की गई है। स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय तथा राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण (NHA) के आँकड़ों के अनुसार, योजना के अंतर्गत अब तक 5 करोड़ से अधिक अस्पताल में भर्ती (hospitalizations) दर्ज की जा चुकी हैं, जिनमें से लगभग 55-60 प्रतिशत लाभार्थी ग्रामीण एवं आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों से संबंधित हैं।¹² विशेष रूप से हृदय रोग, कैंसर, किडनी फेल्योर, न्यूरो-सर्जरी तथा गंभीर दुर्घटनाओं जैसे महँगे उपचारों में गरीब परिवारों की पहुँच में अभूतपूर्व सुधार हुआ है, जो पहले उनकी आर्थिक पहुँच से बाहर थे।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह स्वास्थ्य सेवा की अवधारणा को “इलाज एक विशेषाधिकार है” से बदलकर “इलाज एक सामाजिक अधिकार है” की दिशा में ले जाता है। यह परिवर्तन नागरिकता अधिकारों के विस्तार को दर्शाता है, जहाँ राज्य गरीब नागरिकों के स्वास्थ्य की जिम्मेदारी स्वीकार करता है।

(ख) जेब से खर्च में कमी

भारत में स्वास्थ्य असमानता का सबसे बड़ा और सबसे गंभीर कारण लंबे समय से जेब से किया जाने वाला स्वास्थ्य खर्च रहा है। परंपरागत रूप से भारत की स्वास्थ्य व्यवस्था में सरकारी व्यय सीमित रहा है, जिसके परिणामस्वरूप गरीब और वंचित वर्गों को निजी स्वास्थ्य सेवाओं पर निर्भर होना पड़ा। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5, 2019-21) तथा नीति आयोग की विभिन्न रिपोर्टों के अनुसार, आयुष्मान भारत – प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना (PM-JAY) के लागू होने के बाद गरीब परिवारों के कुल स्वास्थ्य व्यय में लगभग 25-30 प्रतिशत तक की कमी दर्ज की गई है।¹³ यह कमी विशेष रूप से गंभीर बीमारियों—जैसे हृदय रोग, कैंसर, किडनी रोग, सर्जरी एवं दीर्घकालिक उपचार—के मामलों में अधिक स्पष्ट रूप से देखी गई है, जहाँ पहले इलाज का खर्च परिवार की पूरी आर्थिक संरचना को अस्थिर कर देता था। योजना के अंतर्गत कैशलेस और पेपरलेस उपचार की सुविधा ने गरीब परिवारों को इलाज के समय तत्काल धन जुटाने के दबाव से मुक्त किया है, जिससे साहूकारों से कर्ज़ लेने, संपत्ति गिरवी रखने, घरेलू सामान बेचने अथवा इलाज टालने जैसी विवशतापूर्ण रणनीतियों में उल्लेखनीय गिरावट आई है।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि स्वास्थ्य खर्च में कमी केवल आर्थिक राहत तक सीमित नहीं रहती, बल्कि यह सामाजिक सुरक्षा और जीवन गुणवत्ता में व्यापक सुधार का संकेत देती है। जब परिवार स्वास्थ्य व्यय के कारण कर्ज़ में नहीं डूबता, तो बच्चों की शिक्षा, पोषण, आवास और सामाजिक गतिशीलता पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार आयुष्मान भारत योजना ने बीमारी-गरीबी-बीमारी के दुष्चक्र को कमजोर किया है और अंतर-पीढ़ी गरीबी की पुनरुत्पत्ति को रोकने में योगदान दिया है। यह योजना समाज के कमजोर वर्गों को आर्थिक असुरक्षा से बाहर निकालकर उन्हें सामाजिक सम्मान और स्थायित्व प्रदान करती है, जो एक कल्याणकारी राज्य की मूल भावना को प्रतिबिंबित करता है।¹⁴

(ग) जाति आधारित प्रभाव (Caste-wise Impact)

आयुष्मान भारत योजना का प्रभाव सामाजिक रूप से वंचित जातीय समूहों—विशेषकर अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC)—पर अपेक्षाकृत अधिक सकारात्मक रूप में परिलक्षित होता है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्राधिकरण (NHA) द्वारा जारी आँकड़ों के अनुसार, योजना के कुल लाभार्थियों में लगभग 28 प्रतिशत अनुसूचित जाति, 12 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति तथा 38 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग से संबंधित हैं।¹⁵ यह तथ्य इस बात को रेखांकित करता है कि योजना का लक्षित लाभ उन समुदायों तक पहुँच रहा है, जो ऐतिहासिक रूप से सामाजिक, आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी वंचना का शिकार रहे हैं। इन वर्गों में गंभीर बीमारियों के इलाज की पहुँच बढ़ने से न केवल मृत्यु-दर में कमी आई है, बल्कि इलाज में होने वाली देरी और उपेक्षा की प्रवृत्ति भी कम हुई है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से आयुष्मान भारत योजना को सकारात्मक कार्रवाई के एक प्रभावी उपकरण के रूप में देखा जा सकता है। यह योजना जाति आधारित संरचनात्मक असमानताओं को चुनौती देती है, क्योंकि यह स्वास्थ्य संसाधनों तक पहुँच को सामाजिक हैसियत से अलग करती है और आवश्यकता-आधारित बनाती है। इससे जाति आधारित स्वास्थ्य असमानताओं में कमी आई है तथा सामाजिक बहिष्करण (Social Exclusion) की प्रक्रिया कमजोर हुई है। विशेष रूप से ग्रामीण और आदिवासी क्षेत्रों में, जहाँ स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता पहले अत्यंत सीमित थी, योजना ने सामाजिक समावेशन (Social Inclusion) को बढ़ावा दिया है और वंचित वर्गों के लिए स्वास्थ्य को एक मौलिक अधिकार के रूप में स्थापित करने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

(घ) महिलाओं पर प्रभाव

आयुष्मान भारत योजना का एक महत्वपूर्ण और दूरगामी प्रभाव महिलाओं के स्वास्थ्य और सामाजिक स्थिति पर भी देखा गया है। विभिन्न सरकारी और स्वतंत्र अध्ययनों के अनुसार, योजना के अंतर्गत महिला लाभार्थियों की भागीदारी लगभग 48-50 प्रतिशत रही है,¹⁶ जो यह दर्शाती है कि यह योजना लैंगिक दृष्टि से अपेक्षाकृत समावेशी है। मातृ स्वास्थ्य सेवाओं, सुरक्षित प्रसव, प्रसवोत्तर देखभाल, स्त्री-रोग संबंधी सर्जरी, एनीमिया, गर्भाशय एवं स्तन संबंधी रोगों के उपचार में उल्लेखनीय सुधार दर्ज किया गया है। विशेष रूप से ग्रामीण और गरीब परिवारों में, जहाँ महिलाओं का स्वास्थ्य अक्सर उपेक्षित रहता था, वहाँ इस योजना ने उपचार की पहुँच को सरल और सम्मानजनक बनाया है।

समाजशास्त्रीय रूप से यह परिवर्तन महिलाओं की निर्णय-क्षमता, स्वास्थ्य जागरूकता और सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करता है। परिवार के भीतर इलाज संबंधी निर्णयों में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी यह संकेत देती है कि स्वास्थ्य अब केवल पुरुष-प्रधान प्राथमिकता नहीं रहा, बल्कि महिलाओं के जीवन और श्रम-मूल्य को भी सामाजिक मान्यता मिल रही है। यह प्रक्रिया लैंगिक समानता और महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, क्योंकि स्वस्थ महिला न केवल परिवार बल्कि समाज की उत्पादकता और स्थिरता को भी मजबूत करती है।¹⁷

(ङ) ग्रामीण बनाम शहरी गरीब

आयुष्मान भारत योजना का प्रभाव ग्रामीण और शहरी गरीबों पर भिन्न-भिन्न रूपों में परिलक्षित होता है, किंतु दोनों ही संदर्भों में इसका समग्र प्रभाव सकारात्मक रहा है। ग्रामीण क्षेत्रों में इस योजना ने मुफ्त इलाज, रेफरल सुविधा, जिला अस्पतालों और मेडिकल कॉलेजों से जुड़ाव को सुदृढ़ किया है। स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्रों (HWCs) के माध्यम से प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाओं की उपलब्धता बढ़ी है, जिससे ग्रामीण गरीबों को प्रारंभिक जांच, परामर्श और समय पर रेफरल की सुविधा प्राप्त हो रही है। वहीं शहरी क्षेत्रों में, विशेषकर झुग्गी-बस्तियों और प्रवासी श्रमिक वर्ग के लिए, सूचीबद्ध निजी अस्पतालों तक पहुँच संभव हुई है, जो पहले आर्थिक कारणों से इन सेवाओं से वंचित थे।

समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह ग्रामीण-शहरी स्वास्थ्य अंतर को कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल है। योजना ने स्वास्थ्य सेवाओं को औपचारिक ढाँचे में समाहित कर गरीबों को सामाजिक सुरक्षा के दायरे में लाया है। इससे न केवल स्वास्थ्य परिणामों में सुधार हुआ है, बल्कि गरीब वर्ग का राज्य और सार्वजनिक संस्थाओं पर विश्वास भी बढ़ा है। इस प्रकार आयुष्मान भारत योजना ने स्वास्थ्य को एक सामाजिक अधिकार के रूप में स्थापित करते हुए समावेशी और न्यायपूर्ण स्वास्थ्य व्यवस्था की नींव रखने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

7. सामाजिक संरचना और स्वास्थ्य व्यवहार में परिवर्तन

आयुष्मान भारत योजना के परिणामस्वरूप गरीब वर्गों के स्वास्थ्य व्यवहार में भी उल्लेखनीय परिवर्तन देखा गया है। विभिन्न समाजशास्त्रीय अध्ययनों के अनुसार इस योजना ने अस्पताल जाने के प्रति भय को कम किया, सरकारी स्वास्थ्य योजनाओं के प्रति विश्वास को बढ़ाया तथा रोकथाम और समय पर इलाज की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है।¹⁸

यह परिवर्तन एक नई स्वास्थ्य संस्कृति के विकास को दर्शाता है, जहाँ बीमारी को नियति मानने के बजाय उपचार को सामाजिक अधिकार समझा जाने लगा है। यह सामाजिक चेतना और मानव पूँजी निर्माण की प्रक्रिया को मजबूत करता है।

8. सीमाएँ और चुनौतियाँ

यद्यपि आयुष्मान भारत योजना ने उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है, फिर भी इसके क्रियान्वयन में कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। सभी गरीब परिवारों का पूर्ण कवरेज अब भी सुनिश्चित नहीं हो पाया है। ग्रामीण क्षेत्रों में अस्पतालों और विशेषज्ञ डॉक्टरों की कमी, डिजिटल साक्षरता का अभाव, योजना के प्रति सीमित जागरूकता तथा कुछ निजी अस्पतालों की अनिच्छा जैसी समस्याएँ सामने आई हैं।

नीति आयोग (2023) के अनुसार कई जिलों में अस्पतालों की भौगोलिक असमानता के कारण योजना का लाभ समान रूप से नहीं पहुँच पा रहा है, जिससे क्षेत्रीय असंतुलन बना हुआ है।¹⁹

निष्कर्ष

समग्र रूप से यह अध्ययन निष्कर्ष निकालता है कि आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना भारत के गरीब और वंचित वर्गों के लिए स्वास्थ्य सुरक्षा प्रदान करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण, दूरगामी और परिवर्तनकारी पहल सिद्ध हुई है। इस योजना ने स्वास्थ्य सेवाओं तक पहुँच को व्यापक बनाया है, जेब से होने वाले स्वास्थ्य व्यय में उल्लेखनीय कमी की है तथा स्वास्थ्य-गरीबी के दुष्चक्र को कमजोर करने में सार्थक भूमिका निभाई है। जाति, वर्ग, लिंग और क्षेत्रीय आधार पर व्याप्त स्वास्थ्य असमानताओं को कम करते हुए इस योजना ने सामाजिक न्याय, समावेशन और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को सुदृढ़ किया है। यद्यपि कवरेज, अवसंरचना, डिजिटल साक्षरता और क्रियान्वयन से जुड़ी चुनौतियाँ अभी भी विद्यमान हैं, फिर भी समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह योजना स्वास्थ्य को “विशेषाधिकार” से “अधिकार” की ओर ले जाने वाला एक निर्णायक हस्तक्षेप है। उचित सुधारों, जागरूकता और संस्थागत सुदृढीकरण के साथ आयुष्मान भारत योजना भारत में समान, न्यायपूर्ण और समावेशी स्वास्थ्य व्यवस्था की मजबूत नींव रखने की क्षमता रखती है।

संदर्भ-सूची

1. NFHS-5, Ministry of Health and Family Welfare, Government of India.
2. NSSO, Health in India Report, Government of India.
3. NITI Aayog (2019), Ayushman Bharat – PMJAY: Operational Guidelines.
4. नीति आयोग (2018), *आयुष्मान भारत: स्वास्थ्य एवं कल्याण केंद्रों की रूपरेखा*
5. भारत सरकार, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय (2020), *PM-JAY Operational Guidelines*
6. National Health Authority (NHA), Ayushman Bharat Annual Report.
7. कुमार, एस. & जैन, आर. (2020). *Impact of PM-JAY on Poor Households*. *Indian Journal of Health Economics*.
8. शर्मा, वी. & वर्मा, के. (2021). *Rural vs Urban Health Access under PM-JAY*.
9. दत्त, ए. & चौधरी, पी. (2022). *Caste and Gender Dimensions of Health Insurance*.
10. नायर, आर. & राज, डी. (2023). *Health Behavior and Awareness under Ayushman Bharat*.
11. National Sample Survey Organisation (NSSO). (2015). *Key Indicators of Social Consumption in India: Health*. Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India, New Delhi.
12. National Health Authority (NHA). (2022). *Ayushman Bharat PM-JAY Annual Report 2021–22*. New Delhi: Government of India.
13. International Institute for Population Sciences (IIPS). (2021). *National Family Health Survey (NFHS-5)*. Mumbai: IIPS.
14. Sen, A. (1999). *Development as Freedom*. New Delhi: Oxford University Press
15. National Health Authority (NHA). *Ayushman Bharat–Pradhan Mantri Jan Arogya Yojana (PM-JAY): Beneficiary and Caste-wise Coverage Statistics*. Ministry of Health and Family Welfare, Government of India, New Delhi.
16. Ministry of Health and Family Welfare (MoHFW). (2020). *Gender and Health under Ayushman Bharat*. New Delhi.
17. Agarwal, B. (1997). “Bargaining and Gender Relations.” *Cambridge Journal of Economics*, 21(1), 1–26.
18. Parsons, T. (1951). *The Social System*. New York: Free Press.
19. NITI Aayog. (2023). *Evaluation Study on PM-JAY Implementation*. New Delhi: Government of India.



लघु पत्रिकाओं के अस्तित्व का प्रश्न और सुरेंद्र स्निग्ध की संपादन दृष्टि तथा संस्कृति बोध

पंकज कुमार चौधरी*
डॉ. रमेश प्रसाद गुप्ता**

शोध सार :

सुरेंद्र स्निग्ध ने लघु साहित्यिक पत्रिकाओं के अस्तित्व के सम्मुख उत्पन्न अनेक प्रश्नों के बावजूद कई पत्रिकाओं का संपादन बड़ी मजबूती से किया। उन्होंने प्रगतिशील, जनवादी और सर्वहारा संस्कृति के सरोकारों तथा दृष्टि से बगैर कोई समझौता किए लघु पत्रिका आंदोलन की आत्मा को जीवित रखा। हिंदी की लघु पत्रिका आंदोलन के इतिहास में सुरेंद्र स्निग्ध का नाम वैसे संपादकों के रूप में सम्मान के साथ लिया जाएगा जिन्होंने रचनाओं के कंटेंट और चयन में हमेशा समावेशी और सामाजिक न्याय का परिचय दिया और आम-अवाम की आवाज को बुलंद किया। उन्होंने पत्रिकाओं के संपादन में जिस सर्वहारा और जनवादी संस्कृति की वकालत की उससे उनके उन्नत संस्कृति बोध का अहसास होता है।

बीज शब्द : प्रगतिशील, जनवादी, सर्वहारा, समावेशी, लोकोन्मुख, संस्कृति, समकालीन, इतिहास

आज हिंदी साहित्य में दो सौ से ज्यादा लघु पत्रिकाएं निकल रही हैं। इनमें से कुछ मासिक हैं, कुछ द्वैमासिक, कुछ त्रैमासिक हैं और अधिकांश अनियतकालीन। इनके महत्व का अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि समकालीन हिंदी साहित्य का बहुलांश सबसे पहले इन्हीं लघु पत्रिकाओं में छपता है। पुस्तक के रूप में तो वह बाद में प्रकाशित होता है। लेखकों को लेखक होने का प्रमाण-पत्र या उसकी पहली पहचान यही लघु पत्रिकाएं प्रदान करती हैं। बड़े लेखक या प्रकाशक नए लेखकों को यह सलाह देते नजर आते हैं कि पहले पत्रिकाओं में छपो, बाद में पुस्तक छपवाओ। उनके कहने का मतलब यह होता है कि जब तक पत्रिकाओं से अपनी पहचान नहीं बनाओगे, तब तक पुस्तकों का दरवाजा खुलना मुश्किल है।

लघु साहित्यिक पत्रिकाओं का महत्व यह है कि आज हिंदी के अधिकांश स्थापित और महत्वपूर्ण लेखकों ने सालों तक इन्हीं पत्रिकाओं में लिखकर लेखक के रूप में अपनी पहचान और नाम कमाया। इसलिए समकालीन हिंदी साहित्य के इतिहास को यदि लघु पत्रिकाओं का इतिहास कहा जाए तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं के महत्व का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि आज व्यक्ति और संस्थाएं सत्ता की राजनीति करने में ही अपनी भलाई समझती हैं लेकिन दूसरी ओर ये पत्रिकाएं हैं जो निरंतर निर्भीक, जनोन्मुखी और प्रयोगधर्मी बनकर सत्ता और व्यवस्था के खिलाफ आम लोगों की आवाज बनी हुई हैं। कहने का मतलब यह है कि जो जनोपयोगी कार्य बड़ी व्यावसायिक पत्रिकाएं नहीं कर सकती या नहीं करना चाहतीं वह सब ये पत्रिकाएं बिना किसी स्वार्थ या लाभ के कर रही हैं।

लघु पत्रिकाओं का इतना निर्विवाद महत्व होते हुए भी अगर वह अस्तित्व के प्रश्न से गुजर रहा है तो उसके कई कारण हैं। पहला और सामान्य कारण जो सीधे-सीधे समझ में आता है वह है आर्थिक चुनौतियां। आर्थिक चुनौतियां तब पेश आती हैं जब सरकारी और कॉरपोरेट घरानों से विज्ञापन मिलना बंद हो जाता है। सरकार और कॉरपोरेट कभी भी यह नहीं चाहते कि उनके धन से निकली पत्रिकाओं में व्यवस्था के खिलाफ कोई सवाल पैदा किया जाए। ऐसी स्थिति में इन पत्रिकाओं का निकलना मुश्किल हो जाता है क्योंकि उन्हें अपनी निर्भीक आवाज की बिना पर ऐसे समझौते नामंजूर होते हैं। इसलिए देखा गया है कि वही लघु साहित्यिक पत्रिकाएं लंबे समय तक निकलती रही हैं जिनके संपादक या तो खुद साधनसंपन्न रहे हों या पाठक और जनता से चंदा कर रहे हों या व्यक्तिगत प्रयासों से पत्रिका निकालने का साहस कर रहे हों। लघु साहित्यिक पत्रिकाओं का आर्थिक पक्ष संकट का सबब बनकर उनके संपादकों के समक्ष हमेशा मौजूद रहा है। 'बनास जन' के संपादक पल्लव अपने एक इंटरव्यू में रीता दास राम से कहते हैं- "हम जानते हैं कि साहित्य अपने स्वभाव से ही व्यवस्था का आलोचक होता है तो इसका आशय स्पष्ट है कि आप व्यवस्था के पक्ष में पत्रिका नहीं निकाल रहे हैं। तो आप सुविधा की कल्पना कैसे कर सकते हैं? सुविधा की कामना ही है तो साहित्य छोड़कर कुछ और करना चाहिए। फिर भी आपके सवाल की गहराई में जाने की कोशिश करता हूं। मैंने विज्ञापन की लालसा कभी नहीं की बल्कि यह चाहा कि पाठकों से मिलने वाली

* शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिंदी विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

** शोध निर्देशक, आरडीएस कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

राशि ही इतनी आ जाए कि पत्रिका आत्मनिर्भर हो जाए। दूसरी बात यह कि मैं कम से कम खर्च में काम करने में विश्वास रखता हूँ क्योंकि लागत कम होगी तभी पत्रिका जीवित रह पाएगी। आत्मनिर्भर होने जैसी स्थिति तो नहीं आई है तब भी मैं विज्ञापन के लिए परेशान नहीं होता।”¹

पल्लव की बातें बहुत हद तक सही हैं लेकिन हिंदी में अभी तक ऐसी संस्कृति विकसित नहीं हो पाई है जिसमें पाठकों पर हम इतना भरोसा कर लें कि उनके दम पर पत्रिका निकाल ले जाएं। यह बात लगभग मान ली गई है कि इस महंगाई के जमाने में बगैर सरकारी, कॉरपोरेट या किसी अन्य मदद के पत्रिका निकालना मुमकिन नहीं है। ऐसे में हिंदी की लघु पत्रिकाएं साहित्यिक आंदोलन का वाहक होते हुए भी बाजारवाद के दबाव में अपने प्रगतिशील और जनवादी सरोकारों, प्रतिबद्धताओं से समझौता करने के खतरे का भी सामना कर रही हैं। इसके बावजूद गंभीर और जागरूक पाठकों तथा सांस्कृतिक विकास के लिहाज से ऐसी पत्रिकाओं की जरूरत बनी रहती है। हिंदी की लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं का महत्व इस दृष्टिकोण से भी निर्विवाद है कि ये नई पीढ़ी की सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहण करती हैं और अप-संस्कृति के खिलाफ एक शक्तिशाली मंच बनी हुई हैं, इसलिए इन्हें अपने पाठकों तक पहुंचाने के लिए उन व्यावहारिक रास्तों की तलाश करनी पड़ेगी जिनसे उनकी आलोचनात्मक धार भी बनी रहे और नैतिक मूल्यों की भी रक्षा हो जाए।

इधर लघु पत्रिकाओं के साथ डाक खर्च का भी एक संकट उपस्थित हुआ है। अब पत्रिकाओं के तीन सौ या पांच सौ प्रतियों को निकालने में जितनी लागत नहीं आती है उससे ज्यादा उनको पाठकों तक पहुंचाने या डाक खर्च में आ जाती है। यानी नौ की लकड़ी नब्बे खर्च। अब साधारण डाक से पत्रिकाएं लोगों तक बमुश्किल पहुंच पाती हैं इसलिए उन्हें रजिस्टर्ड डाक से भेजने पड़ते हैं, जिसमें पैसा भी ज्यादा लगता है और समय भी खर्च होता है। नई व्यवस्था में डाक खर्च का आलम यह है कि अब पाठकों को पत्रिका भेजने में तीन गुना से ज्यादा धन लगाना पड़ता है।

हिंदी में लघु पत्रिकाओं का एक लंबा इतिहास रहा है। भारत को स्वतंत्रता मिलने से पहले चांद, माधुरी, कर्मवीर, प्रभा, सरस्वती, साहित्य संदेश, इंदु, मतवाला या मर्यादा जैसी पत्र-पत्रिकाएं निकल रही थीं और सबका स्वरूप कमोबेश लघु पत्रिकाओं का था। इन पत्रिकाओं का उद्देश्य व्यापक होने से इन्हें आर्थिक सहयोग भी मिलता था। लेकिन देश को जब आजादी मिली, तो कॉरपोरेट घरानों ने अपने आर्थिक लाभ को ध्यान में रखते हुए पत्रिकाएं शुरू कीं। ऐसे में लेखकों ने महसूस किया कि बड़ी पत्रिकाएं अपने वैचारिक दबावों के कारण केवल विशेष प्रकार की रचनाएं छापती हैं, जिनका जन-सरोकार से उतना वास्ता नहीं होता, जितना होना चाहिए या जनता चाहती है। ऐसे में लघु पत्रिका आंदोलन की जरूरत महसूस हुई, जिसने कविता, कहानी के क्षेत्र में ऐतिहासिक उपलब्धि हासिल की। प्रसिद्ध कथाकार-उपन्यासकार और नाटककार असगर वजाहत कहते हैं- “अपनी बात कहने और लोगों तक पहुंचाने के लिए लघु पत्रिका आंदोलन की शुरुआत हुई जिसका एक बड़ा आधार वैचारिक भी था। वामपंथी रुझानों से लैस पत्रिकाओं के अलावा कुछ पत्रिकाएं विभिन्न साहित्यिक आंदोलनों जैसे अकविता/अकहानी आदि पर भी केंद्रित थीं। साठोत्तरी कहानी के दौर में ऐसी कई महत्वपूर्ण पत्रिकाएं निकली थीं जिन्होंने आंदोलन को स्थापित करने का काम किया था क्योंकि उन दिनों नई कहानी की तूती बोलती थी और उससे अलग या विरोधी स्वर के लिए बड़ी पत्रिकाओं में कोई जगह न थी।”²

ये लघु पत्रिकाएं कॉरपोरेट घरानों की पत्रिकाओं, सत्ता प्रतिष्ठानों और यथास्थिति के विरोध में 'प्रतिरोध की जमीन' मुहैया कराती थीं और व्यवस्था परिवर्तन इनका मुख्य उद्देश्य था। ये पत्रिकाएं उन तक भी पहुंचती थीं जो लेखक नहीं थे लेकिन व्यवस्था परिवर्तन में उनकी भूमिका असंदिग्ध थी। पहले ये पत्रिकाएं सामाजिक सरोकार के तहत मिशनरी भाव से निकला करती थीं। संपादक और उनमें लिखने वाले लेखकों तथा उनसे जुड़े लोगों में एक टीम भावना होती थी जिसकी बदौलत ये पत्रिकाएं आराम से निकलती थीं। लेकिन धीरे-धीरे सब कुछ बदलता गया और आर्थिक दबाव इतना बढ़ा है कि इनका प्रकाशन अब बमुश्किल होता जा रहा है। बड़े और स्थापित लेखक इन लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं में तभी लिखने को तैयार होते हैं जब उन्हें उनका पारिश्रमिक मिलता है। वे खुलकर पारिश्रमिक की मांग करते हैं और तर्क देते हैं कि अमुक पत्रिका ने उन्हें इतना पारिश्रमिक दिया है। ऐसे में लघु पत्रिकाओं को निकालना और भी मुश्किल होता जा रहा है क्योंकि पत्रिकाओं में जब स्तरीय रचनाओं का प्रकाशन ही नहीं होगा तब फिर उनको निकालने का औचित्य ही क्या है। लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं का उद्देश्य गंभीर और सांस्कृतिक रूप से जागरूक तथा चेतनासंपन्न पाठक वर्ग बनाना है, ऐसे में उन्हें नए पाठकों तक पहुंचाने और उनके सांस्कृतिक बोध को जगाने की कठिन चुनौती है। लेकिन वहीं दूसरी ओर आज बड़े अखबारों और पत्रिकाओं में साहित्य-कला और संस्कृति के लिए शायद ही कोई जगह बची है। तमाम अखबारों और पत्रिकाओं में साहित्यिक पृष्ठों की जगह विज्ञापन के पृष्ठों ने घेर ली हैं। ऐसे में लघु पत्रिकाओं को अपने सांस्कृतिक और बौद्धिक दायित्व का निर्वहण करने

का अवसर मिल सकता है और वे अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर सकती हैं। इसके लिए उन्हें समय के अनुसार नए रास्तों की तलाश करनी होगी।

आज बड़ी संख्या में महत्वपूर्ण ऑनलाइन पत्रिकाएं भी निकल रही हैं, जिनमें वेबसाइट्स, ब्लॉग्स आदि प्रमुखता से आते हैं। कोविड के बाद इनका महत्व बहुत बढ़ा है। इनमें छपने के लिए इंतजार भी नहीं करना पड़ता और स्तरीय रचनाएं लिखते ही छप जाती हैं और वे पूरी दुनिया के पाठकों तक पहुंच जाती हैं। लेकिन अधिकांश ऑनलाइन पत्रिकाओं के साथ भी वही दिक्कत है जो प्रिंट की लघु पत्रिकाओं के साथ है। ये भी अपना 'ई-मेल', पत्राचार का पता और मोबाइल फोन नंबर का उल्लेख नहीं करतीं जिनके जरिए इनसे सम्पर्क किया जा सके। ऐसे में पाठकों के लिए पत्रिका प्राप्त करना नामुमकिन-सा हो जाता है। यहां यह उल्लेख करना जरूरी है कि हिंदी के गंभीर और जागरूक पाठक विदेशों में खूब हैं और वे इन पत्रिकाओं से जुड़ना चाहते हैं।

असगर वजाहत इस बाबत कहते हैं- “अभी हाल में ही लंदन से पंजाबी और हिंदी के लेखक केसी मोहन दिल्ली आए हुए थे। उन्हें जब हिंदी की लघु पत्रिकाओं के बारे में जानकारी मिली तो बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने माना कि लंदन में रहते हुए उन्हें यह नहीं पता था कि हिंदी में लघु पत्रिका आंदोलन है और इतनी महत्वपूर्ण पत्रिकाएं छपती हैं। पत्रिकाओं को देखने के बाद उनकी यह प्रतिक्रिया थी कि इन पत्रिकाओं में वे आवश्यक जानकारियां नहीं हैं जो विदेशों में रहने वाले हिंदी पाठकों के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए कुछ विदेशी करेंसी यानी डॉलर या पाउंड में अपनी कीमत नहीं छापतीं। यह भी पता नहीं चलता कि किस प्रकार की डाक से संसार के किस भाग में पत्रिका भेजने पर क्या खर्च आएगा। कुछ पत्रिकाएं अपनी 'वेबसाइट' या 'ई-मेल' का उल्लेख भी नहीं करतीं जो आज की दुनिया में बहुत ही आवश्यक है। ऐसी भी लघु पत्रिकाएं हैं जो अपना टेलीफोन नम्बर तक प्रकाशित नहीं करतीं। ऐसी स्थिति में विदेश में रहने वाले हिंदी पाठकों के लिए पत्रिका प्राप्त करना असंभव-सा हो जाता है।”³

इसलिए हिंदी की लघु पत्रिकाओं को चाहिए कि वे डिजिटल युग के हिसाब से भी अपने को बदले। ताकि उनकी पहुंच वेबसाइट, ब्लॉग और सोशल मीडिया के अन्यान्य प्लेटफॉर्म के माध्यम से पूरी दुनिया से हो सके और यह तभी संभव होगा जब वे सही-सही पत्राचार का अपना पता, ईमेल और मोबाइल नंबर की जानकारी पाठकों को उपलब्ध कराएं। इससे उन्हें लघु पत्रिका आंदोलन की भावना को वैश्विक स्तर पर फैलाने में भी मदद मिलेगी और नया पाठकवर्ग भी मिलेगा।

लघु पत्रिकाओं के साथ एक सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि वे भी राष्ट्रीय स्तर की बनने की होड़ में नामी-गिरामी और स्थापित लेखकों को ही छापना चाहती हैं और क्षेत्र-विशेष के रचनाकारों की उपेक्षा करती हैं। ऐसे में उन्हें यह याद रखना चाहिए कि सोशल मीडिया के जमाने में महानगरों और राजधानियों से दूर-दराज के क्षेत्रों में सामाजिक-राजनीतिक सरोकार की जितनी अच्छी और स्तरीय रचनाएं लिखी जा रही हैं उतनी कहीं नहीं लिखी जा रही हैं। ऐसे में लघु-पत्रिकाओं की पहली प्रतिबद्धता अपने क्षेत्र के लेखकों के प्रति बननी है कि वे उन्हें भी अपनी पत्रिकाओं में प्रमुखता से प्रकाशित करें और लघु पत्रिकाओं के उद्देश्य और लक्ष्य की पूर्ति करें।

हिंदी की लघु पत्रिकाओं के सामने अपने अस्तित्व को बचाने के कई सवाल हैं। इसके बावजूद हंस, कथादेश, तद्भव, समयांतर, उद्भावना, सत्राची, देसज, मंतव्य, समकालीन जनमत, समालोचन, जानकी पुल, पहली बार आदि पत्रिकाएं नियमित रूप से निकल रही हैं और इन्हें अपने समय की श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण रचनाओं को प्रकाशित करने का श्रेय प्राप्त है। इन पत्रिकाओं ने अपने जनोन्मुखी सरोकारों को बरकरार रखा है और अपने तेवर से कोई समझौता नहीं किया है। देश को स्वतंत्रता मिलने के बाद से लघु पत्रिकाओं के निकलने का सिलसिला जारी है। इस बाबत पल्लव बहुत आशान्वित होकर कहते हैं- “जहां तक प्रभाव डालने की बात है तो फिर यही कहूंगा कि यह सवाल पाठकों से ही पूछा जाना चाहिए। लघु पत्रिका आंदोलन फीनिक्स पक्षी की तरह है जिसका मिथक कहता है कि फीनिक्स का जन्म उसकी राख से ही होता है, तो आप देख सकते हैं कि एक लघु पत्रिका बंद हुई तो चार नई लघु पत्रिकाएं निकलने लगीं। लघु पत्रिकाओं का निकलना और पाठकों तक पहुंचना मेरे विचार से स्वयं में एक संदेश है।”⁴

लघु पत्रिकाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि अगर इन्हें अपना अस्तित्व बचाना है तो समय के अनुसार बदलना होगा। पहले की मिशनरी भावना के साथ-साथ अब व्यावहारिक रास्ता भी अख्तियार करना होगा। लघु पत्रिकाओं की पहली जरूरत है अपनी स्वायत्तता और प्रतिबद्धता की रक्षा करते हुए सत्ता और बाजार के प्रभाव में नहीं आएं। उन्हें नए पाठकों तक पहुंचने के लिए अपने को ऑनलाइन और डिजिटल तरीके से जोड़ना होगा, ताकि वे जनता की आवाज को और पुरजोर अंदाज में पूरी दुनिया में फैला सकें।

प्रगतिशील, जनवादी और समावेशी दृष्टि के संपादक सुरेंद्र स्निग्ध

कवि, उपन्यासकार, आलोचक, संस्मरणकार और संपादक सुरेंद्र स्निग्ध कई पत्रिकाओं के संपादन से जुड़े रहे। उनके संपादन में मुख्य रूप से दो पत्रिकाओं के कुछेक अंक सामने आए जिनमें 'नई संस्कृति' और 'उन्नयन' का बिहार कवितांक हैं। वे इसके अलावा भारती, गांव-घर, प्रगतिशील समाज, अयस्टर और शब्दिता जैसी हस्तलिखित और फोल्डरनुमा पत्रिकाओं के संपादन से भी सम्बद्ध रहे। इन पत्रिकाओं के एकाध अंक ही सामने आ पाए और ये पटना विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग और बीएन कॉलेज के छात्र समूह द्वारा निकाली जाती थीं। सुरेंद्र स्निग्ध इन पत्रिकाओं के सूत्रधार, मार्गदर्शक, संरक्षक, सलाहकार और संपादक सब कुछ हुआ करते थे।

सुरेंद्र स्निग्ध ने भारती, गांव-घर, प्रगतिशील समाज, अयस्टर और शब्दिता जैसी पत्रिकाओं से जुड़कर उन्होंने वह काम किया जिसे मौजूदा दौर के संपादक-संस्कृतिकर्मी अपना दायित्व नहीं समझते। उन्होंने इन पत्रिकाओं के जरिए एक ओर जहां कॉलेज और विश्वविद्यालय में साहित्यिक और सांस्कृतिक बोध को जागृत करने तथा एक पर्यावरण विकसित करने की कोशिश की, वहीं दूसरी ओर उन्होंने वहां से प्रतिभाओं की भी खोज की। उनकी प्रतिभा खोज अभियान का इतना सुखद परिणाम बाद में निकलकर सामने आया कि जिन छात्रों और छात्राओं ने इन पत्रिकाओं से अपने लेखन की शुरुआत की, उनमें से अनेक आज महत्वपूर्ण कवि, कथाकार, संपादक और आलोचक के रूप में समकालीन हिंदी साहित्य में समाए हैं।

'नया सांचा' जैसी पत्रिका के संपादन से जुड़े रहे कवि, कहानीकार और विचारक राधेश्याम मंगोलपुरी कहते हैं- "स्निग्ध जी कॉलेज की एक पत्रिका 'भारती' के संपादक थे। उन्होंने मुझसे भी रचनाएं मांगीं। मैंने उन्हें एक कविता और एक कहानी दी। इस पत्रिका में मेरी दोनों रचनाएं छपीं और मैं एक साथ कवि और कहानीकार के रूप में हिंदी पाठकों के सामने आया। मैं लिखता तो पहले से रहा हूँ- आठवीं-नौवीं क्लास में था तब से ही, लेकिन मेरी रचनाएं कभी किसी पत्र-पत्रिका में छपी नहीं थी, कॉपी या डायरी में ही पड़ी रहीं। सुरेंद्र स्निग्ध ने मुझे सबसे पहले छपने का मंच प्रदान किया। यह मेरे लिए गौरव की बात थी कि मुझे साहित्यिक पहचान मिली।"⁵

सुरेंद्र स्निग्ध 'भारती' में चर्चित और वरिष्ठ रचनाकारों के साथ-साथ नए रचनाकारों को भी छापते थे। इससे नए रचनाकारों को एक ओर जहां वरिष्ठ रचनाकारों से बहुत कुछ सीखने को मिलता था, वहीं दूसरी ओर इससे उनका प्रोत्साहन भी होता था और वे गौरवान्वित महसूस करते थे। नौजवानों और युवा रचनाकारों को सही दिशा और राह दिखाना सुरेंद्र स्निग्ध का प्रमुख वैचारिक उद्देश्य था।

वर्ष 1980-81 में प्रकाशित 'भारती' के अंक पर आलोचक और संपादक सुधीर सुमन टिप्पणी करते हैं- "भारती बीएन कॉलेज के हिंदी विभाग की ओर से प्रकाशित हुई थी। लेकिन वह अंक इस मायने में अब भी विशिष्ट है कि एशिया के किसी विश्वविद्यालय के किसी कॉलेज से निकलने वाली एक पत्रिका ने देश-दुनिया के बड़े प्रगतिशील विचारकों और साहित्यकारों से संबंधित सामग्री छापी। खुद महेश्वर ने नचिकेता के साथ मिलकर 'प्रेमचंद के अंतर्विरोधों के बारे में' शीर्षक से एक विचारोत्तेजक लेख लिखा। वह लेख अब भी प्रासंगिक है। काफी मेहनत और शोध से लिखे गए राणा प्रताप के लेख 'पूजीवादी प्रेस और उसके अश्लील प्रकाशन' की प्रासंगिकता अब भी बनी हुई है। रामकृष्ण पांडेय के लेख का शीर्षक है- पूजीवादी प्रेस और प्रगतिशील आंदोलन। कहने का तात्पर्य है कि 'भारती' ने न सिर्फ प्रगतिशील-जनवादी कंटेंट को छापा बल्कि पूजीवादी प्रेस के बरक्स प्रगतिशील जनवादी साहित्य और आंदोलन को विकसित करने की जरूरत पर भी जोर दिया। परवेज अख्तर और हृषीकेश सुलभ ने नाटकों के बारे में लिखा और अरुण कमल ने 'लेखकों की एकता' पर लिखा, जिसे उन्होंने ब्रेख्त की काव्य-पंक्ति से शुरू किया, जिस पंक्ति को आज भी वे अक्सर दुहराते हैं- हम जो दुनियाभर को चाहते थे दोस्त बनाना, आपस में भी दोस्त न हुए।"⁶

'भारती' का यह अंक इतना महत्वपूर्ण और समृद्ध है कि इसे सहेजकर रखा लोगों ने। हिंदी की लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं का जब भी इतिहास लिखा जाएगा इसकी विशेष रूप से चर्चा होगी। इसमें दुनिया के महान कवियों की कविताएं हैं। पाब्लो नेरूदा, ब्रेख्त, एरिक वाइनर्ट, सईद सुल्थानपुर, लैंग्स्टन ह्यूज आदि की कविताएं हमें संवेदित करती हैं। इसी अंक में चेखव और प्रेमचंद की महान कहानियाँ 'नकाब' और 'मुक्तिमार्ग' को भी प्रकाशित किया गया है। इस अंक में 'पिता के नाम कार्ल मार्क्स का खत' और फिदेल कास्त्रो का प्रसिद्ध बयान 'न्याय का अपराध' संपादक सुरेंद्र स्निग्ध की वैचारिक दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है।

सुधीर सुमन टिप्पणी करते हैं- "वैचारिक दृढ़ता के साथ ही व्यापक नजरिया भी संपादक सुरेंद्र स्निग्ध की खासियत है। इस अंक में लू शुन के बारे में चंचल चौहान का लेख है। प्राचीन ईरान के समतावादी व लोककल्याणकारी धार्मिक विचारक मुज्दक पर डॉ. शरफे आलम का लेख ईरान के इतिहास के अनछुए पहलू को उजागर करता है। रामवचन राय ने 'चौथा

सप्तक' पर लिखा है तो मटुकनाथ चौधरी ने प्रगतिशील कवियों के काव्य-संकलन 'रास्ता इधर है' पर। प्रो. सीताराम शर्मा का लेख बेनीपुरी के नाटक 'अम्बपाली' पर केंद्रित है, तो डॉ. रामदेव प्रसाद ने मोहन राकेश की नाट्यभाषा पर लिखा है। कुछ छात्रों की रचनाओं को भी इस अंक में जगह दी गई थी, जिनमें दो नाम राधेश्याम मंगोलपुरी और जावेद अख्तर खां मेरे परिचित हैं। जावेद अख्तर खां की गजल और राधेश्याम मंगोलपुरी की कहानी और कविता तो संजोकर रखने लायक हैं। पत्रिका में जगह-जगह मुक्तिबोध, गोर्की, ब्रेख्त, महाश्वेता देवी, लेव तोलस्तोय सरीखे साहित्यकारों और एनजी. दोब्रोव्युबोव, बीजी बेलिंस्की जैसे सोवियत दार्शनिकों व विद्वानों के उद्धरण भी संपादक की मंशा को जाहिर करते हैं। अंत में लेखकों के परिचय से ठीक पहले पूरे एक पृष्ठ पर दुष्यंत की दो चर्चित पंक्तियां छपी हैं-

सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिए।⁷

सुरेंद्र स्निग्ध का संपादकीय उनकी वैचारिक दृष्टि, जनोन्मुखता और उनके सरोकार का पता देने के लिए पर्याप्त है। उनके संपादकीय बताते हैं कि साहित्य का पहला और बड़ा लक्ष्य है सामाजिक जागरूकता पैदा करना। सामाजिक जागरूकता और गतिशीलता के उद्देश्य से उन्होंने पत्रिकाओं का संपादन किया।

सुधीर सुमन का मंतव्य है- "बेशक सूरत बदलने की कोशिश का ही नतीजा था 'भारती' का वह अंक, जिसके 'संपादक के नोट्स' में प्रेमचंद जन्मशती पर उन्हें याद करते हुए सुरेंद्र स्निग्ध ने बेबाकी के साथ लिखा- 'सारे हिंदुस्तान को स्वीकार करना पड़ा है कि प्रेमचंद से बढ़कर मेहनतकश जनता का सबसे सच्चा हमदर्द लेखक' आजतक दूसरा पैदा न हुआ। प्रेमचंद साहित्य के दस हजार पन्नों में अंकित जनवादी साहित्य की महान विरासत-तमाम शताब्दी समारोहों को चकाचौंध को धत्ता बताते हुए ऐलान कर रही है कि प्रेमचंद ने जिस शोषित-पीड़ित जनता के जीवन और मुक्ति-संघर्ष का प्रामाणिक और विश्वसनीय चित्रण किया है, उस शोषित-पीड़ित जनता के जीवन और मुक्ति-संघर्ष का सक्रिय भागीदार बनकर ही कोई व्यक्ति प्रेमचंद को प्रामाणिक और विश्वसनीय श्रद्धांजलि अर्पित कर सकता है।" संपादकीय के दूसरे हिस्से में उन्होंने जो लिखा, वह उस समय जितना प्रासंगिक था, आज भी उतना ही प्रासंगिक है। उन्होंने लिखा- 'बड़ी विडंबना है कि हमारे देश में चलने वाली हर सरकार लोकतंत्र की परमपवित्र रामनामी से लैस होकर, व्यापक मेहनतकश जनता की कृपा से, गद्दी पर बैठती है और फिर राजनीति के रंगमंच पर ऐसा 'एब्सर्ड' ड्रामा चालू हो जाता है, जिसके तहत 'जनता के प्रतिनिधि जनता की लाठी जनता की भलाई के बहाने जनता की पीठ पर तोड़ना शुरू कर देते हैं। अब स्थिति यह है कि 'जनता की लहलुहान पीठ' के पक्ष में और 'जुल्म की लाठी' के विरोध में उठने वाली न्यायपूर्ण आवाजों का गला घोंटा जा रहा है।' संपादकीय नोट्स में रामकिंकर बैज, रायकृष्ण दास, विनय घोष, साहिर लुधियानवी, मो. रफी, हंस कुमार जैसे कलाकारों-साहित्यकारों और संस्कृतिकर्मियों के निधन की सूचना देते हुए उनके व्यक्तित्व-कृतित्व की सकारात्मक विरासत को एक नई मंजिल तक उन्नत, परिष्कृत और समृद्ध करने की अपील भी की गई है।⁸

सुरेंद्र स्निग्ध की संपादकीय दृष्टि समय और समाज के सरोकार से हमारा परिचय कराती है। उन्होंने प्रगतिशील, जनवादी और लोकोन्मुख रचनाओं को 'भारती' में प्रकाशित करके जनता की चेतना को जागृत करने की कोशिश की। उन्होंने 'भारती' में प्रकाशन के लिए उन्हीं रचनाओं का चयन किया जो जनता की महान प्रगतिशील परंपरा का निर्वहण करने और उसका विकास करने के दृष्टिकोण से सक्षम रहीं। 'भारती' का संपादन और प्रकाशन सुरेंद्र स्निग्ध के सामाजिक और सांस्कृतिक बोध का अहसास कराने के साथ-साथ उनके व्यापक और वैज्ञानिक सोच-समझ का पता देते हैं।

सुरेंद्र स्निग्ध ने 'भारती' और अन्य पत्रिकाओं के अलावा 'नई संस्कृति' के भी दो महत्वपूर्ण अंकों का संपादन किया। 'नई संस्कृति' के संपादक के रूप में उनकी संपादकीय दृष्टि, सूझ-बूझ और कौशल की साहित्यिक बिरादरी में धाक जमी। उन्होंने 'नई संस्कृति' का संपादन करके बिहार और हिंदी पट्टी में चल रहे सर्वहारा और गरीब-गुरबों के आंदोलन का सांस्कृतिक और साहित्यिक समर्थन किया। इस पत्रिका के महत्व का अंदाजा हम इस बात से लगा सकते हैं कि बिहार के सुदूर गांव-घर के कम्युनिस्ट कार्यकर्ता भी इसको बहुत ध्यान से पढ़ते और इसमें छपी रचनाओं को अपने आंदोलन का मंत्र बनाते।

'नई संस्कृति' पटना से निकलती थी और इसकी टैग लाइन होती थी-'मुक्तिकामी जनता की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति।' इसमें देश और दुनिया के सरोकारी लेखन करने वाले वरिष्ठ, युवा और नए लेखक प्रकाशित होते थे। 'नई संस्कृति' के अंक-3 में अफ्रीकी कविताओं के अंतर्गत एक ओर जहां नोबेल पुरस्कार से सम्मानित वाले शोयिका की कविताएं प्रकाशित हैं, वहीं दूसरी ओर महान कवयित्री जिन्जी मंडेला, इल्वा मैके, ओस्वाल्ड मत्सली और पीबी मैगोम्बे जैसे विश्व प्रसिद्ध कवियों को भी पढ़ने को मिलता है। इस अंक में चीनी कथाकार दैंग जेंग की कहानी 'बड़ा शिकार' भी प्रकाशित है जिसका अनुवाद हिंदी के

वरिष्ठ लेखक शरदेन्दु कुमार ने किया है। इसी अंक में महान दार्शनिक अंतोनियो ग्राम्शी के साहित्य और संस्कृति संबंधी चिंतन पर गहन विचार-विमर्श श्रीप्रकाश मिश्र ने किया है। इसमें 'संस्कृति की राजनीति' नामक वैली शिरोत की एक गंभीर टिप्पणी भी प्रकाशित है जिसे संस्कृतिकर्मियों को जरूर पढ़ना चाहिए। समकालीन हिंदी कवि भी इसमें प्रकाशित हैं जिनमें कुमार विकल, मदन कश्यप, अरुण कमल, नचिकेता, रंजीत वर्मा, कुमार अम्बुज, अनिरुद्ध प्रसाद और मनोज मेहता की जनवादी और प्रगतिशील चेतना से हम परिचित होते हैं। हिंदी कहानियों के तहत मनमोहन पाठक और आनंद हर्षुल की कहानियां छपी हैं। इसी अंक में राणा प्रताप का 'साम्प्रदायिकता और अवामी एकता के पहलू' और कथाकार-उपन्यासकार संजीव के 'कथ्य-शिल्प बनाम अभिव्यक्ति के खतरे' नाम से विचारोत्तेजक और चिंतनपरक आलेख साया हुए हैं जो जनता के प्रति अटूट पक्षधरता के लिए हमें प्रेरित करते हैं।

सुरेंद्र स्निग्ध का 'नई संस्कृति' के लिए रचनाओं का चयन करते समय मुख्य उद्देश्य यह होता था कि देश और दुनिया की भाषाओं में जो कुछ भी श्रेष्ठ और मानवीय दृष्टिकोण से लिखा जा रहा है उन्हें अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर हिंदी पाठकों के सामने लाया जाए। इस सिलसिले में उन्होंने अंग्रेजी, रूसी, चीनी, फ्रेंच, इतालवी और जर्मन भाषाओं के साहित्य से खूब हिंदी अनुवाद करवाया। उनके इस प्रयास से हिंदी पाठक विश्व साहित्य की नई प्रवृत्तियों, खोजों, सिद्धांतों और विचारों से अवगत हो सका। यह अकारण नहीं है कि भारतीय भाषाओं में दलित साहित्य, स्त्री साहित्य, आदिवासी साहित्य के पीछे अश्वेत साहित्य, फ्रेंच साहित्य, रूसी साहित्य और अंग्रेजी साहित्य की प्रेरणा है। हिंदी की लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं का जब भी इतिहास लिखा जाएगा, तो उसमें सुरेंद्र स्निग्ध के संपादक की विश्व दृष्टि और सूझ-बूझ का उल्लेख अवश्य किया जाएगा।

सुरेंद्र स्निग्ध ने 'नई संस्कृति' के संपादन में अपने जीवनभर के अनुभव, सोच-विचार, समझदारी, चेतना और सूझ-बूझ की अर्जित और संचित पूंजी को झोंक दिया। उन्होंने इस पत्रिका के जरिए जनता की संस्कृति, संवेदना और चेतना का निर्माण किया। उन्होंने इस अंक के संपादकीय में लिखा है- "नई संस्कृति का यह अंक उपर्युक्त समस्याओं के प्रति सजग ही है। साथ ही संस्कृति के विविध रूपों में संवेदनात्मक स्तर पर एक पाठकीय विश्वसनीयता को अर्जित करने का प्रयास है। 'नई संस्कृति' शासक वर्ग के द्वारा फैलाई जा रही अपसंस्कृति तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के खिलाफ एक सृजनात्मक हस्तक्षेप भी है।"⁹

उपर्युक्त समस्याओं से उनका तात्पर्य मुख्य रूप से जनता की सर्वहारा संस्कृति को बचाने की है जिसे शासक वर्ग द्वारा मिटाने की साजिश रची जा रही है। वे कहते हैं कि सर्वहारा संस्कृति को नए-पुराने नारे लगाकर नहीं बचाया जा सकता है और न ही उसे किसान-मजदूरों के जीवन के सतही और फ्रीज्ड फोटोग्राफी जैसे चित्र उतारकर बचाया जा सकता है। सुरेंद्र स्निग्ध अपने संपादकीय में चिंता जाहिर करते हैं कि आज बाजार रूप बदल-बदलकर हमारे घरों और जीवन में प्रवेश कर चुका है जिसे पहचानने की जरूरत है। उनका मानना है कि बाजार का मतलब होता है सब कुछ को उपभोक्ता में तब्दील कर देना। हरेक शै की कीमत तय कर देना। यही समाज में अपसंस्कृति और उपभोक्तावादी संस्कृति के प्रसार के नियामक कारण बनते हैं। सुरेंद्र स्निग्ध का यह संपादकीय आज से 37-38 साल पहले जितना प्रासंगिक था उससे कम आज प्रासंगिक नहीं है।

'नई संस्कृति' 4-5 संयुक्तांक है। यह दिवंगत लोकप्रिय कवि-गीतकार तथा दार्शनिक गोरख पांडेय को समर्पित है। यह संयुक्तांक अपने समय में बहुचर्चित हुआ था। क्रांतिकारी कवि गोरख पांडेय को समझने के लिहाज से यह अंक बहुत मूल्यवान है। वर्ष 1945 में उत्तर प्रदेश के देवरिया में जन्मे गोरख पांडेय ने 29 जनवरी, 1989 को दिल्ली में आत्म-हनन कर लिया। अपनी क्रांतिकारी और ओजस्वी कविताओं एवं गीतों से गोरख ने आम-अवाम के दिलों में खास जगह बनाई। उनकी कविताएं और गीत हिंदी पट्टी के धधकते खेत-खलिहानों में मशाल का काम करते हैं। गोरख के लिखे हुए गीत 'समाजवाद बबुआ धीरे-धीरे आई' आज भी संसद से सड़क तक सुनने को मिल जाते हैं। सुरेंद्र स्निग्ध ने ऐसे कालजयी और महान रचनाकार को सहेजकर अपनी संपादकीय दृष्टि और सूझ-बूझ का परिचय दिया है।

इस अंक का संपादकीय लिखते हुए सुरेंद्र स्निग्ध ने गोरख पांडेय को इन शब्दों में अपनी श्रद्धांजलि दी है- "साथी गोरख पांडेय की मौत के बाद सांस्कृतिक जगत में जिस तरह का खंड-खंड पाखंड पर्व मनाया गया- उसने हमें और भी दुख पहुंचाया है। हमें तो इस तरह की हत्याओं और आत्महत्या पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए था। पाश, डोभाल तथा हाशमी की हत्याएं और गोरख पांडेय की आत्महत्या किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा की गई व्यक्ति विशेष की हत्या नहीं है। यह तो सत्ताधारियों और उसके चट्टे-बट्टे- एक पूरे वर्ग की काली करतूत है।"¹⁰

सुरेंद्र स्निग्ध का यह संपादकीय गोरख पांडेय के आत्म-हनन के दुख को और गहरा कर जाता है। उनके इस संपादकीय के जरिए गोरख का आत्म-हनन तब और भी मार्मिक हो जाता है जब उनको लेकर तरह-तरह की अफवाहें उड़ाई जाती हैं और उनकी त्रासदी के लिए प्रेम-प्रसंग को जिम्मेदार ठहराया जाता है। सुरेंद्र स्निग्ध का मानना है कि गोरख पांडेय की इस त्रासदी के लिए व्यवस्था जिम्मेदार है क्योंकि जब तलक ऐसी व्यवस्था बनी रहेगी तब तक न जाने ऐसे कितने गोरख

पांडेय, सफदर हाशमी, अवतार सिंह पाश जैसे कलाकारों की हत्या और आत्महत्याएं होती रहेंगी। गोरख पांडेय जैसे जनता के सच्चे हमदर्द कवि कलाकार को व्यवस्था यदि प्रत्यक्ष रूप से खत्म नहीं कर पाती है, तो वह परोक्ष रूप से ऐसा कुचक्र रचती है कि उन्हें आत्म-हनन के लिए विवश होना पड़ता है।

‘नई संस्कृति’ का यह अंक जनकवि गोरख पांडेय के व्यक्तित्व और कृतित्व को समझने के लिहाज से रेखांकित करने योग्य है। संपादक सुरेंद्र स्निग्ध का यह उद्द्यम संग्रहणीय है। यह अंक एक ओर जहां गोरख की कविताओं, भोजपुरी गीतों, संपादक सुरेंद्र स्निग्ध को लिखे पत्रों, साक्षात्कार और साहित्य-संस्कृति संबंधी उनके दार्शनिक-चिंतनपरक आलेखों के लिए याद किया जाएगा, वहीं दूसरी ओर इसमें गोरख का मूल्यांकन करते उन आलेखों को भी शामिल किया गया है जो उनके सरल, सहज, सरोकारी, जनोन्मुख, जनवादी और प्रगतिशील दृष्टिकोण का परिचय देते हैं। ऐसे में कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया (एमएल) के महासचिव दीपकर भट्टाचार्य, राणा प्रताप, राजकुमार कुम्भज, मोदनाथ प्रश्रित, मुकेश प्रत्युष, ओम भारती और शंभु कुशाय के आलेख उल्लेखनीय हैं। इन आलेखों में गोरख पर लगाए गए लांछनों, आरोपों के जवाब तो दिए ही गए हैं साथ ही इनसे गोरख पांडेय के एक ऐसे बड़े कवि-चिंतक होने का पता चलता है जिनमें संघर्षशील जनता के प्रति गहरी बेचैनी और लगाव है।

ओम भारती गोरख पांडेय की कविताओं पर लिखते हैं- “गोरख पांडेय की सामाजिक चिंताएं और सरोकार यहां भी उतने ही सुस्पष्ट हैं। वर्तमान की खलबलाहट और उसके गर्भ में पल रहे भविष्य का रूपाकार भी कवि की कल्पना में साफ-साफ देखा जा सकता है। इन पंक्तियों से यह भी उजागर होता है कि क्रांति-कर्म से सीधे-सीधे जुड़ने वाले इस रचनाकार का अपने विकासक्रम में क्रमशः एक गंभीर चिंतक और विचारक के रूप में उत्तरोत्तर रूपांतरण तथा परिमार्जन होता गया है।”¹¹

इस अंक में हिंदी के अन्य दस कवियों की 15 कविताएं भी प्रकाशित हैं, जिनमें ध्रुवदेव मिश्र पाषाण, तरसेम गुजराल, नूर मुहम्मद नूर, महेश्वर, निलय उपाध्याय, वीरेन नंदा, नरेंद्र पुण्डरीक महत्वपूर्ण हैं। इसमें ईरानी कवि सईद सुल्तानपुर की एक कविता और जवाहर सिंह की ‘शह और मात’ कहानी को भी प्रकाशित किया गया है, जिनके जरिए समय और समाज की हलचल ध्वनित होती है।

निष्कर्ष - हिंदी की लघु-साहित्यिक पत्रिकाओं के अस्तित्व से जुड़े इतने प्रश्नों और संकटों के बावजूद सुरेंद्र स्निग्ध कई पत्रिकाओं के संपादन से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से जुड़े रहे। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के सामाजिक और सांस्कृतिक सरोकारों और मूल्यों से कोई समझौता नहीं किया और बड़े ठसके से उन्हें निकालते रहे। भले ही उनके 1 या 2 ही अंक निकले हों लेकिन उन्होंने पत्रिका निकालने के लिए किसी अनैतिक मूल्यों का सहारा नहीं लिया और लघु पत्रिका आंदोलन की आत्मा को जीवित रखा। हिंदी की लघु पत्रिका आंदोलन के इतिहास में सुरेंद्र स्निग्ध का नाम वैसे संपादकों के रूप में सम्मान के साथ लिया जाएगा जिन्होंने रचनाओं के कंटेंट और चयन में हमेशा प्रगतिशील, जनवादी, समावेशी और सामाजिक न्याय का परिचय दिया और आम-अवाम की आवाज को बुलंद किया। उन्होंने अपनी पत्रिकाओं के जरिए जिस तरह सर्वहारा और जनवादी संस्कृति की वकालत की उससे उनके संस्कृति बोध का भी अहसास हो जाता है। उनके संपादन में निकली गांव घर, भारती, नई संस्कृति, प्रगतिशील समाज (कहानी विशेषांक), उन्नयन, अयस्टर और शब्दिता महज लघु साहित्यिक पत्रिकाएं नहीं हैं बल्कि ये सर्वहारा और जनवादी साहित्य के इतिहास हैं।

संदर्भ सूची :-

1. फेसबुक, रीता दास राम, 16 अक्टूबर, 2024
<https://www.facebook.com/100004045159226/posts/3923115211166612/?rclid=izz0iX4lw5WBu0G4#>
2. बीबीसी, असगर वजाहत, शुक्रवार, 05 जनवरी, 2007
https://www.bbc.com/hindi/entertainment/story/2007/01/070105_guestedit_fourth
3. बीबीसी, असगर वजाहत, शुक्रवार, 05 जनवरी, 2007
https://www.bbc.com/hindi/entertainment/story/2007/01/070105_guestedit_fourth
4. फेसबुक, रीता दास राम, 16 अक्टूबर, 2024
<https://www.facebook.com/100004045159226/posts/3923115211166612/?rclid=5DgLTQkIGpeN73jF#>
5. अभिनव मीमांसा, सुरेंद्र स्निग्ध, स्मृति, दिसम्बर, 2019, सं. डॉ. विवेक पांडेय, 1/99, विजय खंड, गोमती नगर, लखनऊ- 226010, पृष्ठ-134
6. वही, पृष्ठ-146
7. वही, पृष्ठ-146-147
8. वही, पृष्ठ- 147
9. नई संस्कृति, अंक-3, नई संस्कृति, रायहसनपुर, चांयटोला, पटना-800004, बिहार, 1988, पृष्ठ-3
10. नई संस्कृति, अंक-4-5, नई संस्कृति, रायहसनपुर, चांयटोला, पटना-800004, बिहार, 1989, पृष्ठ-2
11. वही, पृष्ठ- 38

भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञानरश्मि का अतुलनीय योगदान : एक अध्ययन

विश्वजीत*

शोध सार :

प्रस्तुत अध्ययन “भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञानरश्मि का अतुलनीय योगदान : एक अध्ययन” है। भारतीय सभ्यता विश्व की प्राचीनतम एवं सतत प्रवाहमान सभ्यताओं में से एक है। इसकी कला, संस्कृति और ज्ञान-परंपरा ने मानव इतिहास को दिशा देने में अतुलनीय योगदान दिया है। यह अध्ययन भारतीय कला-रूपों, सांस्कृतिक मूल्यों तथा ज्ञानरश्मि अर्थात् दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, भाषा और शिक्षा के बहुआयामी प्रभावों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन यह रेखांकित करता है कि भारतीय परंपराएँ केवल अतीत की धरोहर नहीं, बल्कि समकालीन विश्व के लिए भी प्रासंगिक समाधान प्रदान करती हैं।

मुख्य शब्द : भारतीय कला, संस्कृति, ज्ञानरश्मि, सभ्यता, परंपरा, वैश्विक योगदान आदि ।

प्रस्तावना :

भारत की पहचान उसकी विविधता, सहिष्णुता और समन्वयशीलता में निहित है। सहस्राब्दियों से विकसित भारतीय कला और संस्कृति ने न केवल सौंदर्यबोध को समृद्ध किया, बल्कि मानव जीवन के नैतिक, आध्यात्मिक और बौद्धिक पक्षों को भी परिष्कृत किया। ‘ज्ञानरश्मि’ की अवधारणा भारतीय ज्ञान-परंपरा की उस प्रकाश-धारा का संकेत है, जिसने विश्व के अनेक क्षेत्रों—दर्शन, विज्ञान, साहित्य, गणित और चिकित्सा—को आलोकित किया।

भारतीय अक्सर धार्मिक और आध्यात्मिक भावनाओं से प्रेरित होती रही है। जो विभिन्न देवि-देवताओं मंदिरों और धार्मिक स्थलों के माध्यम से व्यक्त होती रही है। भारतीय कला में बौद्ध धर्म अतुलनीय रहा है। जिसने अनेकों स्तूप, चैत, स्मारक एवं बिहार के रूप में अदभूत वास्तुकला को जन्म दिया। बौद्ध धर्म के अलावा (हिन्दु धर्म) सनातन धर्म जैन धर्म, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म तथा सिख धर्म ने भारतीय वास्तुकला को गहराई से प्रभावित किया है। जो मंदिर, मस्जिद, मकबरे और औपनिवेशिक शैलियों के निर्माण में झलकता है। खासकर हिन्दु (नागर/द्रविड़) इंडो-इस्लामिक और ब्रिटिश शैलियों का मिश्रण है।

भारतीय कला एवं संस्कृति की पहचान न केवल स्वराष्ट्र तक सीमित रही है। अपितु दक्षिण-पूर्व एशिया के लगभग सम्पूर्ण देशों को प्राचीन काल से ही प्रभावित करता रहा है। सांस्कृतिक पहचान एक समुह के लोगों को साझा मूल्यों, विश्वासों, तीरि-रिवाजों और व्यवहारों को संदर्भित करती है। सांस्कृतिक विरासत का अर्थ है व्यक्तियों या सामाजिक समुहों की जीवन शैली, कलाकृतियों को पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित एवं उनके गुणों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। यह पूर्वजों उनके विश्वासों और उनके जीवन यापन के तरीके के बारे में बताती है।

भारतीय ज्ञानरश्मि प्राचीन काल से ही समृद्ध और सतत प्रवाहमान बौद्धिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक विरासत रही है। जो बौद्ध ग्रंथों, वेदों, उपनिषदों, योग, आयुर्वेद, गणित, ज्योतिष, कला और साहित्य जैसे विविध क्षेत्रों में फैली रही है। जिसका मुख्य उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करना और समग्र मानव कल्याण करना रहा है। भारतीय ज्ञानरश्मि विशाल समुद्र की तरह रही है, जो निर्झरिणी की भाँती कहीं मंद कहीं तीव्र रपतार से बहती रही है। महामानव बुद्ध सहित तुलसीदास, सुरदास, कालिदास, महावीर और कबीर जैसे, महाकाव्यों की रचना कर जन-जन को प्रभावित किया।¹

भारतीय ज्ञानरश्मि में गुरु शिष्य सम्बंध का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। बौद्ध धर्म में गुरु को एक आध्यात्मिक मार्गदर्शक माना गया है, जो शिष्य को अंधकार से ज्ञान रूपी प्रकाश से प्रकाशित करते रहे हैं। वे उन्हें सत्य का बोध कराते हुए निर्वाण प्राप्ति के मार्ग पर चलने में मदद करते हैं। ये गुरु न केवल ज्ञान देते हैं, बल्कि अपने अनुभवों के माध्यम से आध्यात्मिक विकास के लिए प्रेरित करते रहे हैं।

* शोधार्थी (JRF), विशुअल स्टटिज, स्कूल ऑफ आर्ट एण्ड एस्थेटिक्स, जवाहर नेहरू वि० वि० नई दिल्ली
E-mail: Vishwajeet7157@gmail.com, Mob. : 9546240695

भारतीय संस्कृति में गुरु-शिष्य का परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। जिसमें गुरु अपना सम्पूर्ण ज्ञान शिष्य को प्रदान करने का प्रयत्न करते रहें हैं। यह परम्परा बौद्ध धर्म हिन्दु, जैन, सिख धर्म आदि भारत से उपजे सभी धर्मों में समान रूप से पायी जाती है। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में गुरु-शिष्य का सम्बंध अत्यंत पवित्र और अभिन्न होते थे। इस प्रणाली में गुरु को ईश्वर से भी उपर माना गया है। **गुरुब्रह्मा-गुरुविष्णु, गुरुदेवो महेश्वरा** गुरु साक्षात् पर ब्रह्मा तस्मै, श्री गुरवे नमः गुरु साक्षात् परब्रह्मा तस्मै, श्री गुरवे नमः यह श्लोक स्कंद पुराण के उत्तरखण्ड में गुरु गिता से लिया गया है।¹² जिसमें गुरु को भगवान के रूप माना है।

कबीर कहते हैं :-

**गुरु गोविन्द दोऊँ खड़े, काके लागे पायं,
बलिहारी गुरु आपनो, गोविन्द दियो बताय**

भारतीय संस्कृतिक अनेकता में एकता का प्रतिक हैं। कहा गया है कि “कोस-कोस पर पानी बदले चार कोस पर बाणी” ऐसी संस्कृति जहाँ अनेकों कलाएँ, अनेकों धर्म, के बाद भी जिसकी ज्ञानरश्मि को एक मोतियों की माला की तरह पिरोकर रखा हैं। जिसमें मोती अनेकों प्रकार के हैं रंगों में उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम तक अलग-अलग कला एवं संस्कृति के रूप में विद्यमान रहा है। इस प्रकार भारतीय कला, संस्कृति और ज्ञान, त्रेवेणी संगम के रूप में न सिर्फ स्वराष्ट्र बल्कि दक्षिण-एशिया के लगभग सम्पूर्ण देश को अलोकित किया है।¹³

भारतीय कला में बौद्ध धर्म ने अद्वितीय वास्तुकला को जन्म दिया, जैसे गांधार और मथुरा शैलियों के माध्यम से बुद्ध और बौद्धिसत्त्वों की मूर्तियों को समृद्ध किया। ‘अजंता’ की चित्रकला जैसे उत्कृष्ट भित्तिचित्रों से चित्रकला को नई उच्चाईयों पर पहुँचाया जो आध्यात्मिक विचारों और दृश्य के चित्रण के लिए महत्वपूर्ण थे। सबसे महत्वपूर्ण वास्तुशिल्प वह हैं जो बुद्ध के अवशेषों पर निर्मित होते थे। जैसे साँची स्तुप, भरहुत स्तुप आदी। प्रार्थना और ध्यान के लिए चैतयगृह, भिक्षुओं के निवास के लिए बिहार (गुफाएँ) सम्राट अशोक द्वारा बनावाएँ गए बलुआ पत्थर के उच्चे खंभे पर स्तंभ जिन पर बुद्ध के प्रतिक और पशु आकृति उकेरी जाती थी।¹⁴ बौद्ध कला ने न सिर्फ शिक्षा को जन-सामान्य तक पहुँचाया, बल्कि स्थापत्य, मूर्तिकला और चित्रकला को नया आयाम दिया। जिससे भारतीय संस्कृति और कला का विकास हुआ।

दक्षिण पूर्व एशिया के विविध प्रदेशों में न केवल भारतीय राजाओं के ही शिला लेख मिले हैं अपितु भारतीय व्यापारियों द्वारा उत्कीर्ण कराये हुए लेख भी वहाँ से मिलते हैं, क्योंकि भारत के साहसी व्यापारी प्राचीन काल से ही बड़ी संख्या में इन देशों में व्यापार के लिए जाया-आया करते थे। हलांकी धर्म प्रचार के उद्देश्य से इन देशों में जाने का सुत्रपात बौद्धों द्वारा किया गया था। उनका अनुकरण कर बहुत सा शैव एवं वैष्णव धर्म प्रचारक भी इन देशों में गये और वहाँ के निवासियों को उन्होंने अपने धर्मों का अनुयायी बनाया। यही कारण है कि जो बौद्ध, शैव एवं वैष्णव मंदिरों इन देशों में बड़ी संख्या में निर्मित हुए। जिसका अवशेष वर्तमान समय में भी विद्यमान है। भारतीय धर्मों तथा संस्कृति और कला का प्रभाव इन देशों में अबतक भी नष्ट नहीं हुआ है। श्याम (थाइलैण्ड) बरमा, कम्बोडिया आदी देशों का धर्म आज भी बौद्ध है, और भारत को अपना धर्मभूमि मानते हैं। मलेशिया और इन्डोनेशिया के लोग अब धर्म से मुस्लमान हैं, पर उनकी रहन-सहन प्रथा-परम्परा कला और संस्कृति आदि पर आज भी भारत का बहुत गहरी छाप हैं। वस्तुतः दक्षिण-पूर्व एशिया के इन देशों की विकास भारत के उपनिवेशों के रूप में ही हुआ था। जो तीसरी शताब्दी ई०पू० से 12वीं शताब्दी ई० तक उसी ढंग से भारत के अंग रहे जैसे कि गंधार, कविश और कम्बोज थे। जिसके कारण अनेकों लेखक इस क्षेत्र के देशों को वृहत्तर भारत की संज्ञा से सूचित करते हैं।¹⁵ इसमें संदेह नहीं कि कला, संस्कृति और ज्ञानरश्मि के दृष्टि से देखा जाय तो दक्षिण-पूर्व एशिया के इन प्रदेशों को भारत के सांस्कृतिक साम्राज्य के अंतर्गत मानना सर्वथा युक्तियुक्त हैं।

प्रसिद्ध इतिहासकार सत्यकेतु विधालंकार ने अपनी पुस्तक दक्षिण-पूर्व एशिया और दक्षिण एशिया में भारतीय संस्कृति में लिखे है कि तीसरी शताब्दी ई०पू० तक इन प्रदेशों में किसी उन्नत सभ्यता का विकास नहीं हुआ था। 268 ई० पू० सम्राट अशोक ने धर्म के माध्यम से अन्य प्रदेशों को विजित करने का निती अपनाये और मोग्गलीपुत्र तीष्य के नेतृत्व में तीसरी बौद्ध संगिति को सम्पन्न कर विदेशों में प्रचार मण्डल भेजने का आयोजन किया, तो भारत से दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न प्रदेशों में बौद्ध स्थबिरो (भिक्षुओं) ने धर्म प्रचार कर इन प्रदेशों के लोगों को अपने धर्म के अनुयायी बनाया और भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञानरश्मि से अतुलनिय योगदान दिया।¹⁶

संस्कृति का अर्थ है किसी समाज के ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, रिति-रिवाज, कानून और आदतों को पिढ़ी दर पिढ़ी हस्तांतरित कर उनके गुणों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। यह पूर्वजों उनके विश्वासों और उनके जीवन-यापन के तरीके के बारे में बताती है। यह मूर्त एवं अमूर्त होती है मूर्त संस्कृति का मतलब वे वस्तुएँ जिसे भौतिक रूप से संग्रहित और स्पर्श कर सकता है। जैसे वस्त्र, स्मारक, एवं विभिन्न पुरातात्विक स्थल शामिल है। अमूर्त संस्कृति के मतलब वे वस्तुएँ जो बौद्धिक रूप से स्थितित्व में है। इनमें मूल्य विश्वास, सामाजिक प्रथाएँ, त्योहारों आदि होते हैं। जिसे भावि पिढ़ियों के लिए संरक्षित करना आवश्यक होता है। हर प्राचीन पुरातात्विक स्मारक, मंदिर, मिनार एवं धार्मिक स्थल अनोखी कहानियाँ से जुड़ी होती है। ये कहानियाँ उस शहर के विकास का इतिहास और भविष्य में शहर का दिशा के बारे में भविष्यवानियाँ बताती है। ये कहानियाँ शहर की सुन्दरता बढ़ाती हैं और हमें याद दिलाती है कि पूर्वजों ने इन स्मारकों को विरासत में दिया है।⁷ जिसमें हमें अतीत के बारे में जानकारी मिलती है। आने वाली पिढ़ियों के लिए इन सांस्कृतिक, कला एवं ज्ञान को संयोग कर रखना जरूरी है।

हम अक्सर यह कहते हैं कि हमारी भारतीय कला एवं संस्कृति, नष्ट होती जा रही है। परन्तु यह नष्ट क्यों होती जा रही है इसके बारे में कुछ नहीं सोचते और नहीं अपने प्रयास को लेकर इसपर विचार करते हैं। इसके लिए हमें अपने इतिहास का पूर्णविश्लेषण करने की आवश्यकता है। कम्बोडिया का अंगकोरवात मंदिर जो विश्व का सबसे बड़ी धार्मिक स्मारक है। जिसे मूल रूप से भारतीय राजा सूर्यवर्मण द्वितीय ने 12वीं शताब्दी में बनवाया था। यह मंदिर मेरु पर्वत के प्रतिक है और इसके दिवारों पर भारतीय कला एवं धर्म ग्रंथों के दृश्यों का चित्रण है। इस स्मारक को वर्तमान कम्बोडिया के राष्ट्रीय ध्वज में स्थान दिया गया है एवं इसे विश्व धरोहर में रखा गया है। दुसरा उदाहरण इंडोनेशिया के जावा में स्थित बोरोबुदुर का मंदिर है। जिसे भारतीय शासक शैलेन्द्र ने 778 ई0 से 850 ई0 के बीच में बनवाया था।⁸ यह एक विशाल बौद्ध स्मारक है। इसे भी विश्व धरोहर में रखा गया है इस प्रकार अनेको उदाहरण निम्न प्रकार है।

- चण्डीकलसन—(मध्य जावा) में प्राचीन मंदिर
- दिएङ् (जावा) में चण्डी भीम का मंदिर
- बुद्ध अमोघ शक्ति की मूर्ति (बोरोबुदुर जावा)
- पूर्वी जावा का एक शिव मंदिर
- कोहकेर से प्राप्त विष्णु की मूर्ति का शिर्ष भाग (कम्बोडिया)
- देवराज देवता का मंदिर (कम्बोडिया से प्राप्त)
- अप्सरा की कास्य मूर्ति (कम्बोडिया)
- जैश्या से प्राप्त बोधिसत्व की मूर्ति
- पगान वर्मा का प्रसिद्ध आनन्द बिहार।

इन सभी ऐतिहासिक स्थलों के अध्ययन से भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञानरश्मि आज भी अमिट हैं। जो हर भारतीय को गौरवान्वित करता है। भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञान समय के मांग के अनुसार विकसित और रूपांतरित होती रही हैं। यह प्राचीन काल से ही सुदृढ़ रही है। प्राचीन मान्यताओं पर नजर डाले तो पता चलता है कि इसकी पैठ आज भी ज्यों का त्यों बनी हुई है। हड़प्पा संस्कृति को अध्ययन से पता चलता है कि इस काल में प्रकृति की पुजा होती थी। जो वर्तमान समय भी हमारे संस्कृति में विरजमान है। जैसे पिपल, वटवृक्ष, तुलसी, एवं छट पुजा में जल और सूर्य की पुजा इत्यादि।⁹

भारतीय कला, संस्कृति, ज्ञानरश्मि, की प्रमुख विशेषताओं में अपनी पहचान रखती है। भारत ने विश्व को शुन्य दिया, गणित, खगोल, विज्ञान वेद, आयुर्वेद, योग विवाह, परिवार, संकल्पणा, धर्म संस्कृति, संगित, नृत्य, स्थापत्य, वेदना, विविधता में एकता एवं अखण्डता प्रदान की। पुरातात्विक उदाहरण है कि तक्षशिल, नालंदा, उदंतपुरी, विक्रमशिला जैसे अन्य विश्वविद्यालयों भारत में था जहाँ पुरे दुनियाँ से लोग ज्ञान अर्जित करने के लिए आया करते थे।¹⁰

उद्देश्य :

1. भारतीय कला के विविध रूपों — स्थापत्य, मूर्तिकला, चित्रकला, संगीत एवं नृत्य के ऐतिहासिक विकास और वैशिष्ट्य का विश्लेषण करना।
2. भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्वों जैसे जीवन-दर्शन, नैतिक मूल्य, सामाजिक संरचना एवं लोक-परंपराओं की भूमिका को स्पष्ट करना।

3. भारतीय ज्ञानरश्मि (दर्शन, विज्ञान, गणित, चिकित्सा, योग, भाषा एवं साहित्य) के वैश्विक योगदान का समग्र अध्ययन करना।
4. प्राचीन भारतीय ज्ञान-परंपरा की समकालीन प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना।
5. भारतीय कला, संस्कृति एवं ज्ञान परंपरा के संरक्षण, संवर्धन और नवाचार की आवश्यकता को रेखांकित करना।

निष्कर्षतः भारतीय कला, संस्कृति, ज्ञान एवं भारत में उत्पन्न होने वाले धर्मों को बाहरी आक्रमणकर्ताओं और उपनिवेशवादियों से चुनौतियों का सामना करना पड़ा। जिसका उद्देश्य भारतीय कला, संस्कृति, ज्ञान एवं धर्म को नष्ट करना रहा है। इस्लामिक आक्रमणकारियों ने धार्मिक मंदिरे को निशाना बनाया जो न केवल पुजा के स्थान थे बल्कि ज्ञान, कला एवं संस्कृति के केन्द्र भी थे। इन चुनौतियों के बावजूद भारत समय के कसौटी पर खरा उतरा।

संदर्भ ग्रंथ सूची –

1. सत्यकेतु विधालंकार, दक्षिण-पूर्वी एवं दक्षिण एशिया का सांस्कृतिक इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2013, पृ0-11
2. वही पृ0-17
3. वही पृ0-275
4. सुरेश चन्द्र बनर्जी, प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली, 2008, पृ0-83
5. वही पृ0-119
6. पाण्डेय मिलचन्द्र, प्राचीन भारत के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, राजिव प्रकाशन इलाहाबाद, 1998 पृ0-89
7. वही पृ0-143
8. त्रीपाठी आर0 एस0, प्राचीन भारत का इतिहास, विश्वविद्यालय, प्रकाशन बनारस-203, पृ0-115
9. जे0 एस0 नेगी, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, अनामिका प्रकाशन 2012, पृ0-36
10. जयशंकर मिश्र, प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ एकाडमी पटना 2006- पृ0-253

सेवा एवं त्याग के प्रतिमूर्ति – श्री जगलाल चौधरी

संतोष कुमार*

शोध सारांश :-

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में बिहार का प्रतिनिधित्व करने वाले स्वतंत्रता सेनानियों में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, श्री कृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह जैसे विभूतियों का नाम प्रमुखता से लिया जाता है, वहीं महात्मा गाँधी के आह्वान पर मेडिकल की पढ़ाई छोड़कर असहयोग आंदोलन में स्वयं को समर्पित करने वाले जगलाल चौधरी मुख्य धारा से पृथक नजर आते हैं। सारण जिले के गरखा गाँव में जन्में जगलाल चौधरी ने स्कूली शिक्षा छपरा से पूरा किया तथा पटना कॉलेज, पटना से इंटरमीडिएट करने के उपरान्त मेडिकल की पढ़ाई के लिए कलकत्ता के लिए प्रस्थान कर गये। असहयोग आंदोलन में सक्रियता के पश्चात् वर्ष 1922 में रचनात्मक कार्य जैसे – खादी का उपयोग, चर्खा चलाना आदि का अनुभव उन्होंने 6 माह तक साबरमती आश्रम (गुजरात) में रहकर प्राप्त किया। इसके पश्चात् बिहार विद्यापीठ (सदाकत आश्रम), पटना में वे चर्खा प्रशिक्षक के रूप में कार्य किए। वर्ष 1937 एवं 1946 में बिहार में गठित काँग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल होकर मद्य निषेध कानून लागू करवाया तथा सामाजिक एवं आर्थिक विषमता को दूर करने का अथक प्रयास किया। पंजाब के स्वतंत्रता सेनानी पृथ्वी सिंह आजाद के निमंत्रण पर मंत्री के रूप में जगलाल चौधरी जब अमृतसर पहुँचे तो उनकी सादगीयता को देखकर इन्हें 'बिहार का गाँधी' के रूप में सम्बोधित किया गया। नमक सत्याग्रह एवं अगस्त क्रांति में अपने अमूल्य योगदान से उन्होंने अनेक आंदोलनकर्ताओं को प्रेरित किया। अगस्त क्रांति के दौरान अपने पुत्र के शहीद होने पर शोक व्यक्त करने के बजाए उन्होंने गर्व महसूस किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनैतिक कैदियों की रिहाई पर हो रहे भेद – भाव का उन्होंने प्रबल रूप से विरोध किया तथा अपने कर्तव्य पथ पर निर्भर होकर डटे रहे।

कुंजी शब्द :- बिहार का गाँधी, जगलाल चौधरी, नमक सत्याग्रह, अगस्त क्रांति, राजनैतिक कैदी।

शोध प्रविधि :-

यह शोध आलेख प्रकृति में ऐतिहासिक विश्लेषणात्मक है जिसमें ऐतिहासिक स्रोतों का उपयोग किया गया है। विषयांकित व्यक्ति भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय रहने के साथ ही दीर्घ काल तक बिहार सरकार में उत्पाद एवं लोक स्वास्थ्य मंत्री भी रहे, इसलिए इनके जीवन और निष्पादित कार्यों को जानने हेतु अभिलेखीय सामग्री का सहारा लिया गया है। प्राथमिक स्रोत के साथ ही समकालीन व्यक्तियों और परवर्ती लेखकों द्वारा रचित पुस्तकों तथा साक्षात्कार का भी उपयोग किया गया है।

प्रारम्भिक जीवन :-

सारण जिले के गरखा गाँव में 1 मार्च 1894 को जन्में जगलाल चौधरी ने महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित होकर एवं उनके आह्वान पर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में स्वयं को समर्पित कर दिया। इनके पिता मूसन चौधरी ताड़ी बिक्रय जैसे पारम्परिक व्यवसाय से जुड़े थे वहीं माता तेतरी देवी एक साधारण गृहणी थी।¹ आर्थिक परेशानियों के बावजूद जगलाल चौधरी के पिता ने उनकी शिक्षा में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने दिया। प्राथमिक शिक्षा गाँव में पूरी होने के बाद इनका नामांकन छपरा जिला स्कूल में कराया गया जहाँ से 1912 में उन्होंने प्रथम श्रेणी से मैट्रिक की परीक्षा पास की। जब जगलाल चौधरी को छात्र जीवन में छपरा में रहने की कोई व्यवस्था नहीं हो सकी तब उन्होंने छपरा के सिविल कोर्ट के एक वकील के पुत्र को पढ़ाना प्रारम्भ किया, तत्पश्चात् वकील साहब ने अपने दालान में रहने का जगह दिया था।² वर्ष 1914 में पटना कॉलेज, पटना से इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् मेडिकल की शिक्षा ग्रहण करने के लिए उन्होंने कलकत्ता मेडिकल कॉलेज में अपना नामांकन करवाया। विद्यार्थी जीवन में ही जब वे कॉलेज में अध्ययनरत थे, उनके कुछ विद्यार्थी मित्रों ने उन्हें भोजन देने से मना कर दिया। जगलाल चौधरी ने प्रतिक्रिया स्वरूप भोजन करना ही छोड़ दिया तब उनके मित्रों को विवश होकर उन्हें अपने संगति में रखना स्वीकार

* सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग, एस0 एन0 कॉलेज, शाहमल खैरा-देव, रोहतास, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा। Email : santosh_310@yahoo.com

करना पड़ा। यद्यपि उनकी चिकित्सा की पढ़ाई का खर्च उनके पिता ताड़ी की बिक्री करके पूरा करते थे तथापि जगलाल चौधरी नशे के व्यापार को सामाजिक बुराई मानते थे तथा इसके परित्याग हेतु अपने पिता से बार-बार आग्रह भी करते थे। इन्हीं परिस्थितियों में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में भारत में असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हुआ। इस समय जगलाल चौधरी मेडिकल की पढ़ाई के अन्तिम वर्ष में थे तथा उनका विवाह भी हो गया था।

महात्मा गाँधी के सम्भाषणों, विचारों एवं आंदोलन के तरीकों से प्रेरित होकर जगलाल चौधरी ने मेडिकल की पढ़ाई का परित्याग कर असहयोग आंदोलन में स्वयं को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया। वर्ष 1921-22 में सारण जिला कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण कर विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक गतिविधियों में तत्परता से भाग लिया। वे महात्मा गाँधी से इतना प्रभावित थे कि वर्ष 1922 में ही जब गाँधी जी का सानिध्य पाने का अवसर मिला तो लगभग 6 माह तक साबरमती आश्रम (गुजरात) में अपनी सेवा दिये। अपनी जीवन शैली को गांधीमय बनाने के साथ-साथ अनेक रचनात्मक कार्यों यथा खादी का उपयोग, चरखा चलाकर सूत काटना, सादगी जीवन जीना, सत्याग्रह के मार्ग का अनुसरण करना आदि को भी आत्मसात किया। बिहार वापस आने पर उन्होंने बिहार विद्यापीठ (सदाकत आश्रम), पटना में चरखा प्रशिक्षक के रूप में कार्य किया। वे वर्ष 1926-28 तक बिहार चरखा संघ, के तत्वाधान में भी कार्यरत रहे। वर्ष 1928-30 तक पूर्णियाँ जिले में संचालित ग्राम सुधार कार्य में जगलाल चौधरी की भूमिका काफी सराहनीय रही।³ वे पूर्णियाँ के टीकापट्टी आश्रम में प्रसिद्ध गाँधी वादी वैद्यनाथ प्रसाद चौधरी के साथ रहने लगे, तथा राजनीतिक गतिविधियों के संचालन पर विशेष ध्यान दिया।⁴

जन आन्दोलन में सहभागिता :-

सविनय अवज्ञा आंदोलन भी जगलाल चौधरी से अछूता नहीं रहा। नमक सत्याग्रह आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाते हुए उन्होंने बिहार के विभिन्न क्षेत्रों में लोगों को नमक बनाने के लिए प्रेरित किया। 15 जनवरी 1934 को बिहार में आये भूकम्प में 20 हजार से अधिक लोगों की असामयिक मृत्यु हो गयी तथा वृहत् स्तर पर जमीन, मकान, रेलवे, तार, सड़क आदि को नुकसान पहुँचा।⁵ इस समय अनुग्रह नारायण सिंह एवं जगलाल चौधरी सहित अनेक कांग्रेसी नेता जेल में थे। जेल से रिहा होते ही जगलाल चौधरी ने भूकम्प पीड़ितों के राहत एवं पुनर्वास हेतु हर सम्भव प्रयास किया। द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर तत्कालीन वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने भारत को भी इसमें शामिल होने की घोषणा कर दी। भारत को इस महायुद्ध में शामिल करने सम्बंधी उद्देश्य स्पष्ट नहीं होने के कारण बिहार के कांग्रेस मंत्रिमंडल ने 31 अक्टूबर 1939 को त्याग पत्र दे दिया। वर्ष 1940 में रामगढ़ में कांग्रेस अधिवेशन का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता मौलाना अबुल कलाम आजाद ने की। इस अधिवेशन में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में अहिंसक आंदोलन एवं रचनात्मक कार्यक्रम के संचालन पर जोर दिया गया। 30 मार्च 1940 को महात्मा गाँधी ने हरिजन में "एवरी कमिटी इज सत्याग्रह कमिटी" नामक शीर्षक का एक लेख लिखा। इसके पश्चात् बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में सदाकत आश्रम, पटना में 4 अप्रैल 1940 को कार्य समिति की बैठक আহूत की गई। इसमें बिहार प्रांतीय कांग्रेस कमिटी को सत्याग्रह कमिटी में परिवर्तित किया गया। कांग्रेस कार्य समिति के निर्णय के आलोक में राजेन्द्र प्रसाद के द्वारा 20 अप्रैल 1940 से 26 अप्रैल 1940 तक सोनपुर में सत्याग्रह शिविर का आयोजन किया गया। इस शिविर में श्रीकृष्ण सिंह, अनुग्रह नारायण सिंह, जगलाल चौधरी सहित कुल 291 सत्याग्रहियों ने भाग लेकर चरखा चलाया एवं सूत काता।⁶

कांग्रेस कार्यकारिणी की 15 सितम्बर 1940 को बंबई में हुई बैठक में गाँधी जी के नेतृत्व में व्यक्तिगत सत्याग्रह की घोषणा हुई। 17 अगस्त 1940 को बिनोवा भावे ने वर्धा से लगभग 7 मील दूर पौनार, नामक गाँव में व्यक्तिगत सत्याग्रह आरंभ किया।⁷ बिहार में भी व्यक्तिगत सत्याग्रह की भावना प्रबल होने लगी। राजेन्द्र बाबू ने श्रीकृष्ण सिंह एवं अनुग्रह नारायण सिंह को सत्याग्रही चुना। बिहार में 28 नवम्बर 1940 को व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ तथा श्रीकृष्ण सिंह प्रथम सत्याग्रही हुए जिन्हें बाँकीपुर से गिरफ्तार किया गया।⁸ जगलाल चौधरी ने पूर्णियाँ जिला कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रमों के संचालन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, इसलिए गाँधीजी ने उन्हें पूर्णियाँ जिले में व्यक्तिगत सत्याग्रह के लिए चुना।⁹ जगलाल चौधरी को भी नवम्बर 1941 में व्यक्तिगत सत्याग्रही के रूप में गिरफ्तार किया गया।

दिसम्बर 1941 में जिला स्तरीय राजनैतिक सम्मेलन का आयोजन पूर्णियाँ में हुआ जिसमें अनुग्रह बाबू, जगलाल चौधरी एवं पं० विनोदानंद झा सम्मिलित हुए। इसमें सत्याग्रह की उपयोगिता एवं रचनात्मक कार्यक्रमों पर प्रकाश डाला गया। 31 जुलाई 1942 की शाम अंजुमन इस्लामिया हॉल, पटना में एक आम सभा

का आयोजन किया गया जिसमें श्री बाबू अनुग्रह बाबू, जगलाल चौधरी सहित अनेक कांग्रेसी नेताओं ने वहाँ उपस्थित विद्यार्थियों से अपील किया कि वे कांग्रेस द्वारा संचालित क्रांतिकारी कार्यक्रम का अनुसरण करें।¹⁰ जब अगस्त क्रांति की शुरुआत हुई तब 8 अगस्त 1942 की रात जगलाल चौधरी कांग्रेस का संदेश देने के लिए मुंगेर कांग्रेस भवन पहुँचे परन्तु वह भवन पुलिस के कब्जे में था। उन्होंने भागलपुर पहुँचकर कांग्रेस कार्यकर्ताओं को समझाया कि रेल पटरी उखाड़ने के पूर्व स्टेशन मास्टर को अवश्य सूचित किया जाए ताकि जान-माल की क्षति ना हो। पुलिस से छीने गये शस्त्र का उपयोग नहीं करने तथा अपने नियंत्रण में आये सरकारी खजाने को सुरक्षित रखने का भी निर्देश दिया।¹¹ जगलाल चौधरी के नेतृत्व में ही 9 एवं 10 अगस्त को मोकामा में अनेक सभाएँ आयोजित हुई। इस आंदोलन के समय जुलूस निकाला गया तथा सरकारी भवनों पर झण्डा फहराया गया। 11 अगस्त 1942 को बिहार एसेम्बली भवन पर झण्डा फहराने में शहीद हुए सात तरुण स्वतंत्रता सेनानियों की प्रतिक्रिया में पूरे प्रांत में जन आंदोलन ने उग्र रूप धारण कर लिया। 18 अगस्त को सारण जिले के सिसवा एवं मसरक थानों पर आक्रमण करने वाले आंदोलनकर्ताओं के ऊपर सैनिकों ने गोलियाँ चलायीं। 22 अगस्त को भी सैनिकों द्वारा गरखा में गोली चलायी गई जिसमें जगलाल चौधरी के सुपुत्र इन्द्रदेव चौधरी शहीद हो गये।¹² अपने पुत्र की शहादत पर जगलाल चौधरी ने आँसू बहाने के बजाय कहा कि देश की स्वतंत्रता हेतु मैं अपने अनेक पुत्रों की शहादत के लिए तैयार हूँ। इसके पश्चात् जगलाल चौधरी को गिरफ्तार कर जेल भेज दिया गया।

राजनैतिक एवं प्रशासनिक भागेदारी :-

जगलाल चौधरी ने विभिन्न जन आंदोलनों में अपनी सक्रिय भूमिका निभाने के साथ ही अपनी राजनीतिक एवं प्रशासनिक प्रतिभा से भी लोगों को अवगत कराया। भारत शासन अधिनियम 1935 के तहत प्रान्तों में चुनाव की घोषणा की गई। कांग्रेस ने 1935 के अधिनियम को स्वीकार तो नहीं किया फिर भी इस प्रान्तीय चुनाव में बढ़-चढ़ कर भाग लेने का निश्चय किया गया। 1937 में हुए प्रान्तीय चुनाव में बिहार में कांग्रेस की भारी विजय हुई। चुनाव के पश्चात् श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में बिहार में गठित कांग्रेस मंत्रिमंडल में श्री बाबू ने गृह, राजस्व तथा न्याय विभाग सम्भाला वहीं अनुग्रह बाबू को वित्त, स्थानीय स्वशासन तथा लोक निर्माण विभाग एवं जगलाल चौधरी को उत्पाद तथा लोक स्वास्थ्य विभाग का मंत्री बनाया गया। इस अवसर पर बिहार प्रांत के अनेक शहरों में इस नवगठित मंत्रिमंडल के लिए स्वागत समारोह का आयोजन किया गया। 25 जुलाई 1937 को छपरा में सैयद महमूद और जगलाल चौधरी के सम्मान में भी एक विशाल सामारोह का आयोजन हुआ। 1 अगस्त 1937 को प्रांत के अधिकांश क्षेत्रों में मंत्रिमंडल दिवस मनाया गया।¹³ यद्यपि जगलाल चौधरी को कैबिनेट का पद मिलने में सामाजिक एवं जातीय प्रतिद्वन्द्विता की भूमिका की चर्चा होती है परन्तु स्वयं जगलाल चौधरी जातीय विषमता अथवा इसके आधार पर प्राथमिकता के निर्धारण के खिलाफ थे।¹⁴ वर्ष 1939 में गाँधी सेवा संघ के पाँचवें अधिवेशन के अवसर पर वृंदावन में खादी से बने सामग्रियों की प्रदर्शनी लगायी गई तथा यह प्रचारित किया गया कि 'मुफ्त में मिले विदेशी उपहार से बेहतर है खादी का प्रयोग।' इस प्रदर्शनी शिविर में डॉ० सइद महमूद, शिक्षामंत्री एवं जगलाल चौधरी, उत्पाद मंत्री ने भी भाग लिया।¹⁵

बिहार में वर्ष 1946 में होने वाले प्रान्तीय चुनाव में 152 सीटों में से कांग्रेस ने 98 सीट प्राप्त किया एवं पुनः श्रीकृष्ण सिंह के नेतृत्व में मंत्रिमंडल का गठन किया गया। श्रीकृष्ण सिंह को प्रधानमंत्री और अनुग्रह बाबू को वित्त मंत्री बनाया गया। जगलाल चौधरी इस समय जेल में बन्द थे, अतः उन्हें सर्वप्रथम रिहा कराया गया। अगले दिन जगलाल चौधरी ने मंत्री पद का शपथ लिया तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भी इस पद को सुशोभित किया।

वर्ष 1951 में जब श्रीकृष्ण सिंह ने कम्युनिस्टों को छोड़कर शेष सभी राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव कैबिनेट में रखा तब जगलाल चौधरी ने राजनैतिक कैदियों की रिहाई में होने वाले इस भेद-भाव को अनुचित बताते हुए प्रबल विरोध किया। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि इस विरोध की कीमत भविष्य में उन्हें अपना मंत्री पद गँवा कर चुकाना पड़ा। वर्ष 1953 में जगलाल चौधरी ने 'ए प्लान टू रिकन्स्ट्रक्ट भारत' नामक पुस्तक की रचना की जिसमें उन्होंने डॉ० भीमराव अम्बेडकर के विचारों का समर्थन करते हुए सभी वर्ग के स्त्री - पुरुष को समान अधिकार एवं अवसर प्रदान किये जाने पर जोर दिया।¹⁶

जगलाल चौधरी की लोकप्रियता एवं आम लोगों के बीच स्वीकार्यता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त जगदीशपुर (आरा) में आयोजित एक सभा में तत्कालीन मुख्यमंत्री श्रीकृष्ण सिंह को सम्मानित किया जाना था परन्तु वहाँ कुछ लोग हंगामा करके आयोजन में बाधा

पहुँचाने वाले थे। जब जगलाल चौधरी को इस सभा में आमंत्रित किया गया तब आयोजन शांतिपूर्ण हुआ एवं श्रीकृष्ण सिंह और जगलाल चौधरी को सम्मानित किया गया।¹⁷

स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भी कई बार जगलाल चौधरी बिहार विधान सभा के लिए निर्वाचित हुए एवं सदन से लेकर आम लोगों तक आर्थिक एवं सामाजिक विषमता का विरोध किया तथा नवगठित आधुनिक बिहार की राजनैतिक एवं प्रशासनिक दायित्वों का सफलतापूर्वक निर्वहन किया। 9 मई 1975 को जगलाल चौधरी का निधन हुआ एवं पूरे राजकीय सम्मान के साथ उन्हें अन्तिम बिदाई दी गई।

अतः जगलाल चौधरी का नाम आधुनिक बिहार के स्वतंत्रता सेनानी, कुशल राजनीतिज्ञ, दक्ष प्रशासक एवं समर्पित समाजसेवक के रूप में हमेशा यादगार रहेगा क्योंकि इन्होंने देश की आजादी के लिए अपने व्यक्तिगत एवं पारिवारिक जीवन को पूर्णरूपेण समर्पित कर दिया।

संदर्भ:-

1. दास, प्रमोदानन्द एवं कुमार, विजय (2014) : “द लिगेसी ऑफ जगलाल चौधरी : सर्विसेस एण्ड सेक्रिफाईसेस”, अभिलेख – बिहार, अंक – 5, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 155
2. चन्द्रभूषण (2013) : “बिहार के दलितोद्धारक : जगलाल चौधरी” अभिलेख – बिहार, राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 78.
3. प्रसाद, आर० आर० (2015) : “राष्ट्रीय आंदोलन में बिहार के वंचित समाज की भूमिका : जगलाल चौधरी के विशेष संदर्भ में” अभिलेख बिहार, अंक – 6, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या-90.
4. चन्द्रभूषण (2013) : “बिहार के दलितोद्धारक : जगलाल चौधरी ” अभिलेख बिहार, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित पृष्ठ – 79
5. दत्त, के० के० (2014) : “बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास” बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण, भाग-2, पृष्ठ – 202
6. प्रसाद, आर० आर० (2015) “राष्ट्रीयता आंदोलन में बिहार के वंचित समाज की भूमिका : जगलाल चौधरी के विशेष संदर्भ में” अभिलेख बिहार अंक-6, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 91.
7. दत्त, के० के० (2014) : “बिहार में स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास ” बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण भाग – 2, पृष्ठ – 371
8. तिवारी, पी० एन० (2013) : “बिहार विभूति डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह”, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 95
9. राम, सरपंच (2012) : “जगलाल चौधरी”, बिहार विभूति, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 123
10. श्रीवास्तव, एन० एम० पी० (1998) : “बिहार में राष्ट्रीयता का विकास” बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना द्वारा प्रकाशित, तृतीय संस्करण, पृष्ठ – 133
11. नारायण, बी० (2007): “अगस्त क्रान्ति”, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ-38- 39.
12. आर्या, जे० (2018): “स्वाधीनता आंदोलन और बिहार”, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ-110.
13. सिंह, एन० एन० पी० (2013) : “आधुनिक बिहार के निर्माता डॉ० श्रीकृष्ण सिंह खण्ड-1 (1887 – 1947)”, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 71
14. मिश्रा० आर० (2015) : “अनुग्रह नारायण सिन्हा : द मैन एण्ड हिज मिल्यू”, अभिलेख बिहार, अंक – 8, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 318 – 319.
15. कुमार, बी० (2017) : “रेकॉर्ड्स ऑफ द विजिट ऑफ महात्मा गाँधी इन बिहार इन डिफरेंट फेजेज, 1920 – 47” वॉल्यूम-2 डायरेक्टोरेट ऑफ बिहार स्टेट अर्काइव्स, पृष्ठ – 806.
- 16- <https://www.forwardpress.in/2022/01/remembering-jaglal-chaudhary-hindi/>
17. कुमार, विजय (2015) : “निदेशक अभिलेख बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा डॉ० धर्मदेव चौधरी (श्री जगलाल चौधरी के सुपुत्र) का साक्षात्कार”, बिहार विधान मंडल में जगलाल चौधरी का सम्भाषण, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ – 279.

भारत में दृष्टिहीनता और उसके कारणों का एक शैक्षिक अध्ययन

विवेक सिंह*

देखने में दिक्कत एक गंभीर पब्लिक हेल्थ समस्या है, खासकर भारत जैसे विकासशील देशों में। भारत में बचपन में देखने में दिक्कत के कारणों पर डेटा सीमित है। इस स्टडी का मकसद भारत में देखने में दिक्कत के मुख्य कारणों का पता लगाना था। यह देखने की क्षमता से संबंधित है कि आँख मानव शरीर के सबसे जटिल इंद्रिय अंगों में से एक है जो हमें प्रकाश का एहसास कराती है। यह हमें आसपास की दुनिया के बारे में अन्य चार इंद्रियों की मदद से ज़्यादा देखने और जानने की अनुमति देती है। हम अपनी आँखों का इस्तेमाल लगभग हर उस गतिविधि में करते हैं जो हम करते हैं, चाहे वह देखना, पढ़ना, लिखना, काम करना, टेलीविज़न देखना, साइकिल चलाना, और अनगिनत अन्य तरीकों से हो। यह हमें दुनिया में वस्तुओं के आकार, रंग और आयामों को देखने और समझने की भी अनुमति देता है जो आँख तेज़ रोशनी या हल्की रोशनी का पता लगा सकती है, लेकिन जब रोशनी नहीं होती तो वह वस्तु को महसूस नहीं कर सकती। उसे दृष्टिहीनता जाना जाता है।

मुख्य शब्द:- दृष्टिहीनता, कारण, पहचान और निवारण।

परिचय

बहुत से लोगों को अपनी ज़िंदगी में कभी न कभी किसी न किसी तरह की नज़र की समस्या होती है। कुछ लोग दूर की चीज़ें साफ़ नहीं देख पाते। कुछ लोगों को छोटी प्रिंट पढ़ने में दिक्कत होती है। इस तरह की समस्याओं को अक्सर चश्मे या कॉन्टैक्ट लेंस से आसानी से ठीक किया जा सकता है। नज़र की कमज़ोरी का मतलब है देखने की क्षमता में इतनी ज़्यादा कमी कि उसे चश्मे या दवा जैसी आम चीज़ों से ठीक न किया जा सके। नज़र की कमज़ोरी बीमारी, चोट, या जन्मजात या उम्र बढ़ने वाली बीमारियों के कारण हो सकती है। यूनाइटेड स्टेट्स में, "आंशिक रूप से दिखाई देना," "कम दिखाई देना," "कानूनी तौर पर अंधा," और "पूरी तरह से अंधा" जैसे शब्दों का इस्तेमाल स्कूल, कॉलेज और दूसरे शैक्षणिक संस्थान उन छात्रों के बारे में बताने के लिए करते हैं जिन्हें देखने में दिक्कत होती है।

भारत में देखने में कमी पर शुरुआती अध्ययन और सर्वे से पता चला है कि, बच्चों और वयस्कों में अंधापन का मुख्य कारण मोतियाबिंद है, बच्चों में अंधापन मुख्य रूप से रोके जा सकने वाले कारणों जैसे विटामिन A की कमी, कॉर्नियल स्कारिंग और जन्मजात विकारों के कारण होता है, जो ग्रामीण इलाकों में काफी आम हैं। कुछ प्रमुख अध्ययन इस बात पर ज़ोर देती हैं कि लगभग 38% अंधे बच्चों में इलाज योग्य या रोके जा सकने वाले कारण होते हैं, जो बेहतर शुरुआती पहचान और हस्तक्षेप कार्यक्रमों की ज़रूरत को बताते हैं।

विज़ुअल इम्पेयरमेंट (VI) एक ऐसी स्थिति है जिसमें देखने की क्षमता कम हो जाती है जिसे रिफ्रैक्टिव करेक्शन (चश्मा या कॉन्टैक्ट लेंस), सर्जरी या मेडिकल इलाज से ठीक नहीं किया जा सकता। नतीजतन, इससे देखने के काम में दिक्कतें आती हैं, जिनकी पहचान ठीक न होने वाली देखने की क्षमता में कमी, देखने के सीमित दायरे, और कम कंट्रास्ट सेंसिटिविटी के साथ-साथ चकाचौंध के प्रति ज़्यादा संवेदनशीलता और रोज़मर्रा के काम, जैसे पढ़ना या लिखना, करने की क्षमता में कमी से की जा सकती है।

कॉर्न और लस्क इस बात की पुष्टि करते हैं कि VI वाले लोगों की देखने की क्षमता मापने योग्य होती है, फिर भी उन्हें रिफ्रैक्टिव करेक्शन का इस्तेमाल करने के बाद भी देखने से जुड़े काम करने में दिक्कतें आती

* M.Ed. Spl. Edu.

हैं। इसके अलावा, ये व्यक्ति कभी-कभी क्षतिपूर्ति करने वाले लो-विज़न एड्स और/या पर्यावरणीय बदलावों का उपयोग करके देखने से जुड़े काम करने की अपनी क्षमताओं में सुधार कर पाते हैं। VI का यह विवरण उपयोगी है क्योंकि यह स्वीकार करता है कि VI वाले व्यक्तियों में विज़ुअल फंक्शन में हमेशा अनुमानित क्लिनिकल बदलाव नहीं दिख सकते हैं और फंक्शनल विज़न में बदलाव हमेशा क्लिनिकल निष्कर्षों में मापने योग्य बदलावों से संबंधित नहीं हो सकते हैं।

अध्ययन के उद्देश्य:

- देखने में दिक्कत वाले बच्चों की पहचान करना
- इंटरवेंशन की ज़रूरत और महत्व को परिभाषित करना और समझाना
- क्लिनिकल असेसमेंट के महत्व को समझाना
- “क्लिनिकल इवैल्यूएशन” और “फंक्शनल विज़न” के बीच अंतर करना
- विज़ुअल एफिशिएंसी का वर्णन करना और देखने में दिक्कत वाले व्यक्तियों के लिए विज़ुअल एफिशिएंसी को बढ़ावा देने वाली एक्टिविटीज़ का सुझाव देना;

देखने में कमी के कारण

वयस्क: अंधापन के मुख्य कारण रिफ्रेक्टिव एरर और मोतियाबिंद हैं।

बच्चे: मुख्य कारणों में कॉर्नियल स्कारिंग, मोतियाबिंद, ग्लूकोमा और रेटिनल बीमारियाँ शामिल हैं।

रोका जा सकने वाला इलाज: बच्चों में देखने में कमी का एक बड़ा हिस्सा पोषण की कमी (जेरोफ़ैथैल्मिया) और इन्फेक्शियस बीमारियों के कारण होता है, जिन्हें रोका जा सकता है।

क्षेत्रीय असमानताएँ: शहरी इलाकों की तुलना में ग्रामीण इलाकों में अक्सर बिना ठीक किए गए रिफ्रेक्टिव एरर और बिना इलाज वाले मोतियाबिंद की दर ज्यादा होती है।

दृष्टिहीनता की व्याख्या

दृष्टि हानि का मतलब है ऐसी दृष्टि जिसे स्टैंडर्ड प्रिस्क्रिप्शन लेंस, मेडिकल इलाज या सर्जरी से पूरी तरह ठीक नहीं किया जा सकता। दृष्टि हानि शब्द में अच्छी इस्तेमाल करने लायक दृष्टि से लेकर कम दृष्टि, या बिल्कुल भी दृष्टि न होना - यानी पूरी तरह अंधापन - तक की स्थितियाँ शामिल हैं। जब लोग दृष्टि हानि के बारे में बात करते हैं तो कई शब्दों का इस्तेमाल किया जाता है।

अंधापन

अंधापन शब्द का मतलब है दोनों आँखों में रोशनी को बिल्कुल भी महसूस न कर पाना। शायद इसे समझाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप किसी अंधेरी जगह पर खड़े होने या अपनी आँखों को ढकने की कल्पना न करें, बल्कि इसके बजाय यह सोचें कि आप ठीक अपने पीछे क्या देख सकते हैं। अब, अपना सिर घुमाए बिना, सिर्फ अपनी आँखों से यह देखने की कोशिश करें कि आपके ठीक पीछे क्या है। अंधेरे का वह गहरा एहसास जहाँ सिर्फ दूसरी इंद्रियाँ आपको बताती हैं कि आपके पीछे क्या है, वह एक देखने वाला व्यक्ति रोशनी को महसूस न कर पाने के अनुभव के सबसे करीब पहुँच सकता है। भले ही आप अपनी आँखें बंद कर लें और आँखों पर पट्टी बाँधकर पूरी तरह अंधेरे में खड़े हो जाएँ, फिर भी आपकी आँखें किसी तरह की इमेज को देखने की कोशिश करती हैं। अंधापन के कई अलग-अलग रूप होते हैं जिनमें रोशनी को महसूस करने का स्तर अलग-अलग होता है। हालाँकि, लोग अक्सर रोशनी के साथ परछाई या परछाई के साथ कुछ रोशनी देखते हैं। इस स्थिति में कोई व्यक्ति कैसे देखता है, यह आँख की स्थिति और देखने की क्षमता कम होने के कारण पर निर्भर करता है।

गंभीर दृष्टि हानि

गंभीर दृष्टि हानि एक ऐसा शब्द है जिसका इस्तेमाल नेशनल सेंटर फॉर हेल्थ स्टैटिस्टिक्स (NCHS) के शोधकर्ता उन लोगों में दृष्टि हानि का वर्णन करने के लिए करते हैं जो सुधार के बाद भी सामान्य अखबार की छपाई नहीं पढ़ पाते हैं। यह शब्द, जिसका मुख्य रूप से आबादी में दृष्टि हानि का अध्ययन करने के लिए उपयोग किया जाता है, नेत्र देखभाल पेशेवरों द्वारा क्लिनिकल संदर्भों में उपयोग नहीं किया जाता है। गंभीर दृष्टि हानि वाले लोग कानूनी रूप से अंधे हो भी सकते हैं और नहीं भी।

दृष्टिबाधित

दृष्टिबाधित शब्द का उपयोग नेशनल सेंटर फॉर हेल्थ स्टैटिस्टिक्स द्वारा आबादी में दृष्टि हानि का अध्ययन करने के लिए भी किया जाता है, जो उन लोगों में दृष्टि हानि का वर्णन करता है जिन्हें सुधार के बाद भी सामान्य अखबार की छपाई पढ़ने में कठिनाई होती है। गंभीर दृष्टि हानि शब्द की तरह, दृष्टिबाधित शब्द का उपयोग आबादी का अध्ययन करने वाले शोधकर्ताओं द्वारा किया जाता है और क्लिनिकल संदर्भों में इसका उपयोग नहीं किया जाता है।

प्रेसबायोपिया

प्रेसबायोपिया का तात्पर्य आंख की समायोजन क्षमता में कमी से है, यानी व्यक्ति और वस्तु के बीच की दूरी के आधार पर आंख की फोकस करने की शक्ति और फोकस को समायोजित करने की क्षमता में कमी। प्रेसबायोपिया वाले लोग, आमतौर पर 40 वर्ष और उससे अधिक उम्र के लोग, उम्र के साथ लेंस के कम लचीले होने के कारण पास की वस्तुओं पर फोकस करने में धीरे-धीरे असमर्थता का अनुभव करते हैं। आवश्यक सुधार प्रदान करने के लिए आवर्धन वाले लेंस का उपयोग किया जाता है। इन लेंसों को आमतौर पर "रीडिंग ग्लास" कहा जाता है, या आवश्यक आवर्धन को व्यक्ति के नियमित चश्मे में बाइफोकल या ट्राइफोकल के रूप में शामिल किया जा सकता है। प्रेसबायोपिया को ठीक करने के लिए वेरिबल फोकस लेंस भी उपलब्ध हैं।

कम दृष्टि

कम दृष्टि, दृष्टि का एक कम स्तर है जिसे पारंपरिक चश्मे से पूरी तरह से ठीक नहीं किया जा सकता है। यह अंधापन जैसा नहीं है। एक अंधे व्यक्ति के विपरीत, कम दृष्टि वाले व्यक्ति के पास कुछ उपयोगी दृष्टि होती है। हालांकि, कम दृष्टि आमतौर पर पढ़ने या गाड़ी चलाने जैसी दैनिक गतिविधियों में बाधा डालती है। कम दृष्टि वाला व्यक्ति दूर की छवियों को पहचानने या समान रंगों के बीच अंतर करने में सक्षम नहीं हो सकता है। कानूनी अंधापन को बेहतर आंख में 20/200 से कम की सबसे अच्छी सुधारी गई केंद्रीय दृष्टि (सही दृष्टि 20/20 है) या बेहतर आंख में 20 डिग्री या उससे कम की साइड दृष्टि के रूप में परिभाषित किया गया है। यहां तक कि जो लोग कानूनी रूप से अंधे हैं, उनके पास भी कुछ कार्यात्मक दृष्टि हो सकती है। यह ध्यान देने योग्य है कि यदि कोई कानूनी रूप से अंधा है, तो वे कुछ सरकारी लाभों के लिए पात्र हो सकते हैं। इसके अलावा, यह अनुमान है कि 65 वर्ष से अधिक उम्र की सामान्य आबादी का लगभग 17 प्रतिशत या तो अंधा है या कम दृष्टि वाला है।

निवारण

जिन बच्चों को देखने में दिक्कत होती है, उनकी पहचान निवारण करना बहुत ज़रूरी है। देखने में दिक्कत वाले बच्चों की पहचान कुछ आसान तरीकों से की जा सकती है; चश्मे, इलाज या सर्जरी से नज़र को बेहतर बनाया जा सकता है। शुरुआती दखल सेवाओं का कमज़ोर नज़र वाले शिशुओं और छोटे बच्चों की देखने की क्षमताओं को बेहतर बनाने पर बहुत ज्यादा असर पड़ता है।

इसलिए, सही समय पर देखने में दिक्कत वाले बच्चों की पहचान करना बहुत ज़रूरी है। इन बच्चों की पहचान उनकी आँखों की स्थिति और देखने के काम के ऑब्जेक्टिव असेसमेंट के आधार पर होनी चाहिए। यह असेसमेंट छात्र की सीखने के माहौल में अपनी नज़र का इस्तेमाल करने की क्षमता के बारे में जानकारी देता है।

देखने की क्षमता का विकास कोई पैसिव, जन्मजात प्रतिक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक खास माहौल में किसी व्यक्ति के कुल व्यवहार का एक पहलू है। किसी व्यक्ति की देखने की क्षमता का आकलन करने में विज़ुअल एक्यूटी एक भ्रामक गुण है। देखने की क्षमता का संबंध ज़रूरी नहीं कि देखने में कमी या नुकसान की डिग्री से हो। यह एक ऐसा कौशल है जिसे क्रम से सीखा जाता है। भले ही आँख की बेसिक स्थिति अपरिवर्तित रहती है, लेकिन ट्रेनिंग और अनुभव ने देखने की प्रक्रिया के विकास को बेहतर बनाने में योगदान दिया है, खासकर विज़ुअल एफिशिएंसी की डिग्री में। विज़ुअल एफिशिएंसी यह प्लान बनाने के लिए ज़रूरी है कि कोई कैसे देखता है, और यह छात्रों की क्षमता को बढ़ाती है।

विज़ुअल व्यवहार और विज़ुअल एफिशिएंसी के विकास में रिसोर्स टीचरों और स्पेशल एजुकेटर्स की भागीदारी के संबंध में विज़ुअल एफिशिएंसी पर कुछ रिसर्च स्टडीज़ की गई हैं। इंटीग्रेटेड और स्पेशल स्कूल प्रोग्राम के लिए लो विज़न स्टिम्युलेशन प्रोग्राम लागू करें और कमज़ोर नज़र वाले बच्चों की विज़ुअल एफिशिएंसी में सुधार करें।

कमज़ोर नज़र वाले छात्रों के लिए पहले शुरू किए गए कई प्रोग्राम बंद कर दिए गए हैं क्योंकि पूरी तरह से अंधे छात्रों को लगा कि उन्हें कमज़ोर नज़र वाले छात्रों की तुलना में कम महत्व दिया जा रहा है। पूरी तरह से अंधे छात्रों को यह समझाने की कोशिश की जानी चाहिए कि यह कमज़ोर नज़र वाले छात्रों की ज़रूरत है, न कि उनके लिए महत्व का कोई कारण। कमज़ोर नज़र वाले छात्रों को पूरी तरह से अंधे छात्रों के पूरक के रूप में विकसित किया जाना चाहिए। कमज़ोर नज़र वाले बच्चों से संबंधित फॉलो-अप परिणामों पर जानकारी।

इसलिए हमें क्लिनिकल और फंक्शनल असेसमेंट प्रक्रियाओं के मतलब, ज़रूरत और महत्व पर ध्यान देना चाहिए। जिसमें ध्यान, ट्रेकिंग, विज़ुअल क्लोज़र, विज़ुअल बैकग्राउंड, फॉर्म कॉन्स्टेंसी, आँख-हाथ कोऑर्डिनेशन, और आँख-पैर कोऑर्डिनेशन, और देखने की क्षमताओं को बेहतर बनाने वाली एक्टिविटीज़ पर फोकस करना चाहिए। वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइज़ेशन की "बचाव योग्य अंधेपन को खत्म करने की ग्लोबल पहल" पर रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत में 8.9 मिलियन अंधे लोग हैं।

निष्कर्ष

यह स्टडी छात्रों में जन्मजात आँखों की बीमारियों और देखने में कमी के अनजान कारणों के बड़े बोझ को उजागर करती है, जो बेहतर डायग्नोस्टिक सुविधाओं की ज़रूरत पर ज़ोर देती है। ज़्यादातर अंधे और कमज़ोर नज़र वाले छात्र शहरी इलाकों से थे। यह असमानता ग्रामीण आबादी के लिए स्पेशलाइज़्ड हेल्थकेयर सेवाओं तक सीमित पहुँच को दिखाती है और ग्रामीण इलाकों में हेल्थकेयर तक पहुँच को बेहतर बनाने के लिए ज़्यादा केंद्रित दृष्टिकोण की ज़रूरत पर ज़ोर देती है। संभावित रूप से रोकी जा सकने वाली या इलाज योग्य कारणों का ज़्यादा अनुपात नियमित स्क्रीनिंग और समय पर मेडिकल/सर्जिकल हस्तक्षेप के महत्व पर ज़ोर देता है। स्कूलों में बच्चों की नियमित स्क्रीनिंग से ऐसे बच्चों की भी पहचान की जा सकती है जिन्हें शुरुआती हस्तक्षेप और लो विज़न डिवाइस (LVDs) से फायदा हो सकता है। इस स्टडी में आधे से ज़्यादा छात्र 10 साल से ज़्यादा उम्र के थे। यह विशेष शिक्षा के बारे में जागरूकता की कमी को दर्शाता है। देखने में कमी, शुरुआती निदान के महत्व और उपलब्ध उपचारों के बारे में शैक्षिक अभियानों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाने से माता-पिता और समुदायों के बीच स्वास्थ्य-संबंधी व्यवहार में काफी सुधार हो सकता है। मौजूदा प्राथमिक रोकथाम रणनीतियों को मज़बूत करने की ज़रूरत है, जबकि राज्य के विभिन्न स्वास्थ्य क्षेत्रों में तृतीयक रेफरल केंद्र, बाल चिकित्सा नेत्र विज्ञान केंद्र, कम दृष्टि क्लीनिक और विशेष शिक्षा और पुनर्वास केंद्रों की स्थापना बचपन के

रोके जा सकने वाले और टाले जा सकने वाले अंधेपन के प्रबंधन के लिए आवश्यक है। हेल्थकेयर नीतियां विकसित करना जो आँखों की देखभाल को प्राथमिकता दें और बाल चिकित्सा नेत्र विज्ञान के लिए संसाधन आवंटित करें, सेवा वितरण और पहुँच को बढ़ा सकता है।

संदर्भ

- कॉफ़मैन, जे. एम. और हलाहन, डी.पी. (1981). स्पेशल एजुकेशन की हैंडबुक। प्रेंटिस हॉल, नई दिल्ली।
- न्यूमैन, एस., और जैकब, एन. (2009). अंधे बच्चों की मदद करना। द हेस्पेरियन फाउंडेशन, कैलिफ़ोर्निया।
- पुनानी, बी., और रावल, एन. (2000). दृष्टिबाधितों के लिए हैंडबुक। ब्लाईंड पीपल्स एसोसिएशन, अहमदाबाद।
- मुखोपाध्याय, एस., मणि, एम.एन.जी., रॉय चौधरी, एम., और जांगिरा, एन.के. (1988). दृष्टिबाधितों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए स्रोत पुस्तक। नई दिल्ली: NCERT।
- मेसन, एच. और मैककॉल, एस. (2003). दृष्टिबाधित - बच्चों और युवाओं के लिए शिक्षा तक पहुंच। लंदन: डेविड फुल्टन पब्लिशर्स।
- मैकनॉटन, जे. (2005). कम दृष्टि का मूल्यांकन। बटरवर्थ हेनेमैन/एल्सवियर, एडिनबर्ग।
- लोवेनफेल्ड, बी. (1973). स्कूल में दृष्टिबाधित बच्चा। जॉन डे कंपनी, न्यूयॉर्क।
- विजयन, पी., और ग्नाउमी, वी. (2010). कम दृष्टि वाले बच्चों की शिक्षा। कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- शॉल, जी.टी. (1986). अंधे और दृष्टिबाधित बच्चों और युवाओं के लिए शिक्षा की नींव: सिद्धांत और व्यवहार। AFB प्रेस, न्यूयॉर्क।
- C. E. Gilbert, L. Anderton, L.Dandona, और A.Foster, 'बच्चों में दृष्टि हानि की व्यापकता: उपलब्ध डेटा की समीक्षा', J. S. Rahi, C. E. Gilbert, A. Foster, और D. Minassian, 'बचपन के अंधेपन के बोझ को मापना', British Journal of Ophthalmology,
- L. Kong, M. Fry, M. Al-Samarraie, C. Gilbert, और P. G. Steinkuller, 'दुनिया भर में बचपन के अंधेपन के कारणों की प्रगति और बदलती महामारी विज्ञान पर एक अपडेट', Journal of American Association for Pediatric Ophthalmology and Strabismus,
- S. Resnikoff et al., 'वर्ष 2002 में दृष्टि हानि पर वैश्विक डेटा', Bull World Health Organ, खंड 82, संख्या 11, पृष्ठ 844-851, नवंबर 2004।
- 'visual_impairment_and_blindness_fact_sheet.pdf' 31 मई, 2024।
- मित्तल एस.आर.: दृष्टिबाधित बच्चों की शिक्षा
- के.के. पाक्लिकर: दृष्टिबाधितों के लिए प्रदर्शन परीक्षण
- सिंह ए.के.: व्यवहार विज्ञान में परीक्षण, माप और अनुसंधान के तरीके
- अनास्तासी ऐनी और अर्बिना सुजाना: मनोवैज्ञानिक परीक्षण
- लोवेनफेल्ड बर्थोल्ड: स्कूल में दृष्टिबाधित बच्चा
- गुर लुल्ला डॉ. सुनीता: भारत में कम दृष्टि के व्यापक प्रबंधन के लिए दिशानिर्देश (एक विज्ञान 2020: देखने का अधिकार)
- वेरगारा, एन.सी.: दृष्टिबाधा और सीखना
- रैंडल टी. जोस (1983): कम दृष्टि को समझना। न्यूयॉर्क: अमेरिकन फाउंडेशन फॉर द ब्लाईंड
- मणि एम.एन. जी.: दृष्टिबाधित बच्चों के लिए पढ़ने की पसंद का परीक्षण (REPT)

भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में संस्कृत पत्र-पत्रिकाओं का अवदान

पंकज चन्द्र गोस्वामी

भारतीय इतिहास में अंग्रेजों के भारत आगमन, उपनिवेशवाद की स्थापना तथा भारतीयों द्वारा ब्रिटिश सत्ता से स्वतंत्र होने के निरन्तर प्रयास स्वतंत्रता आन्दोलन के रूप में वर्णित है। इस स्वतंत्रता आन्दोलन की आवाज भारतीय उपमहाद्वीप के प्रत्येक कोने से निरन्तर सुनाई देती रही थी जिसमें सभी वर्ग, जाति, भाषा व सम्प्रदायों का योगदान रहा। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में जहां एक ओर क्रांतिकारी वीरों ने सशस्त्र आंदोलन से उपनिवेशवादियों को त्रस्त कर रखा था वहीं अहिंसक सत्याग्रहियों ने भी सत्याग्रह, विरोध, अनशन व प्रदर्शन द्वारा स्वतंत्रता के प्रति जनजागरण के साथ-साथ अंग्रेजों के भारत में स्थापित सौ साल पहले जड़ को हिला दिया था अहिंसक सत्याग्रहियों की जन-जागरूकता की अभिव्यक्ति का माध्यम तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएं भी थी क्योंकि हिंदी, अंग्रेजी व स्थानीय भाषाओं में छपी ये पत्र-पत्रिकाएं ही जनमानस के विचारों के संचार की अभिव्यक्ति की साधन थीं। संस्कृत भाषा भी इस आंदोलन से अछूती नहीं रही थी। जो भावना देश की दूसरी भाषाओं में लिखी गई उन्हीं भावनाओं की अभिव्यक्ति संस्कृत भाषा के पत्र-पत्रिकाओं में भी निबद्ध की गई। अंग्रेजों के शासन में भारतीयों ने जिस प्रकार के पारतन्त्र्य का अनुभव किया, संस्कृत पत्रकारों एवं कवियों की रचनाओं में भी वैसा ही निदर्शन प्राप्त होता है। परतन्त्रता के विरोध में स्वतंत्रता के पक्ष में संस्कृत कवियों व पत्रकारों ने अपनी लेखनी चलाई।

संस्कृत पत्रकारिता का इतिहास में ईस्वी सन् 1866 में पहली जून को काशी से प्रकाशित काशी विद्या सुधानिधि: से माना जाता है। संस्कृत पत्रकारिता की इस प्रथम पत्रिका का दूसरा नाम था पण्डित पत्रिका। काशी से ही 1967 ई. में अलकनन्दिनी का प्रकाशन आरम्भ हुआ। ये समाचार पत्र शुद्ध रूप से समाचार पत्रों की परिभाषाओं पर खरे नहीं उतरते थे। अप्रैल, 1872 ई. में लाहौर से विद्योदय: नए साज-सज्जा के साथ शुद्ध समाचार पत्र के रूप में अवतरित हुआ। हृषीकेश भट्टाचार्य के सम्पादकत्व में इस पत्रिका ने संस्कृत पत्रकारिता को अपूर्व सम्बल प्रदान किया। विद्योदय: से प्रेरणा पाकर संस्कृत में अनेक नयी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगीं। संस्कृत की ये दोनों ही पत्रिकाएँ प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का भी प्रकाशन करती थीं।¹

काशीविद्यासुधानिधि: (1866)से प्रारंभ हुयी इस संस्कृत पत्रकारिता की यात्रा में अनेक छोटे-बड़े पड़ाव आये। भारत की इस देवभाषा कही जाने वाली इस भाषा की पत्रकारिता के इतिहास में, वैसे तो अनेक दैनिक-मासिक पत्र-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है परन्तु केसरी जो कि एक साप्ताहिक पत्रिका थी उसकी बात ही अलग है। विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, बाल गंगाधर तिलक, वामन शिव राम आपटे, गणेश कृष्ण गर्दै, गोपाल गणेश आगरकर और महादेव वल्लभ नाम जोशी के हस्ताक्षरों के साथ केसरी का उद्देश्य-पत्र 1880 ईस्वी. की विजयादशमी को मुम्बई के नेटिव-ओपिनियन में प्रकाशित कराया गया। केसरी के प्रकाशन का निर्णय तो हो गया लेकिन मुद्रण के लिए पूँजी की समस्या थी। अन्ततः नाम जोशी की व्यावहारिक-कुशलता के साथ 4-जनवरी 1881 को पुणे से साप्ताहिक केसरी (मराठी) का प्रति मंगलवार को प्रकाशित होने लगा।

इस पत्रिका की एक खास बात है कि संस्कृत के दिग्गज रचनाकार पण्डित राज जगन्नाथ के भामिनी विलास का प्रसिद्ध संस्कृत श्लोक, केसरी के उद्देश्य और कार्य को द्योतित करता है। विष्णु शास्त्री चिपलूण कर द्वारा चयनित और केसरी के मुख पृष्ठ पर निरन्तर छपा यह श्लोक इस प्रकार है-

स्थिति नो रे दध्याः क्षणमपि मदान्धेक्षण-सखे ! गज-श्रेणीनाथ! त्वमिह जटिलायां वनभुवि।

असौ कुम्भि-भ्रान्त्या खरनखरविद्रावित-महा-गुरु-गाव-ग्रामः स्वपितिगिरिगर्भहरिपतिः ॥²

अर्थात् हे गजेन्द्र ! इस जटिल वन-भूमि में तुम पलभर के लिए भीम तरु को, क्योंकि यहाँ पर पर्वत-गुफा में वह केसरी (हरिपति) सो रहा है जिसने हाथी के माथे जैसी दिखने की भ्रान्ति में बड़ी-बड़ी शिलाओं को भी अपने कठोर नाखूनों से चूर-चूर (विद्रावित) कर दिया है।

बंकिमचन्द्र चटर्जी द्वारा रचित विख्यात बंगला उपन्यास आनंद मठ का वन्दे मातरम्³ उद्घोष-गीत भारतीय जनमानस को पूरी तरह से छूने में सक्षम रहा था। तत्कालीन भाषा पत्रकारिता के लेखक-सम्पादक-प्रकाशक अधिकाधिक संख्या में या तो संस्कृत के जानकार व विशेषज्ञ थे अथवा संस्कृत की पत्रकारिता के प्रति समर्पित कार्य के लिए संस्कृत के समृद्ध साहित्य का आश्रय लेते थे। चूँकि स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए जन-सामान्य की भाषा में संचार और सम्वाद करना ज़रूरी था, इसलिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में तुलनात्मक रूप से अधिक और संस्कृत में कम, पत्र-पत्रिकाएँ छपती रहीं। किन्तु भारत के सभी राज्यों से प्रकाशित होने वाली संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं की गणना की जाये तो किसी एक प्रान्तीय-भाषा या हिन्दी या अंग्रेजी-उर्दू की तुलना में समग्र रूप से संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं की संख्या शताधिक मानी जा सकती है।

बिहार का पहला संस्कृत-पत्र 1878 ई. में विद्यार्थी के नाम से पटना से निकला।⁴ यह मासिक पत्र 1880 ई. तक पटना से नियमित निकलता रहा और बाद में उदयपुर से पाक्षिक रूप में प्रकाशित होने लगा। कुछ समय बाद यह पत्रिका श्रीनाथद्वारा से प्रकाशित होने लगी। आगे चल कर यह हिन्दी की हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका और मोहनचन्द्रिका पत्रिकाओं में मिलकर प्रकाशित होने लगी। यह संस्कृत भाषा का पहला पाक्षिक-पत्र था जिसके सम्पादक पं. दामोदर शास्त्री थे एवं इसमें यथानाम प्रायः विद्यार्थियों की आवश्यकता और हित को ध्यान में रखते हुए सामग्री प्रकाशित की जाती थी। 1880 ई. में पटना से मासिक धर्मनीति-तत्त्वम् का प्रकाशन हुआ, किन्तु इसके विषय में अधिक जानकारी नहीं मिल पाती है और न ही इसका कोई अंक उपलब्ध है। 17 अक्टूबर, 1884 ई. को कुट्टूर (केरल) से विज्ञान-चिन्तामणि: नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ हुआ। कुछ समय बाद, प्रचारातिरेक के कारण यह पत्रिका पाक्षिक, दशाह्निक और अन्ततः साप्ताहिक हो गयी। नीलकान्त शास्त्री के सम्पादकत्व में यह पत्रिका संस्कृत पत्रकारिता के विकास में मील का पत्थर सिद्ध हुयी।

संस्कृत की समृद्धि, प्रतिष्ठा और शिक्षाप्रणाली के परिष्कार के लिए पं. अम्बिकादत्त व्यास द्वारा 1887 ई. में स्थापित संस्था बिहार-संस्कृत-संजीवन-समाजः, संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए प्रयासरत रही। इसकी पहली बैठक 5 अप्रैल, 1887 ई. में हुयी, जिसकी अध्यक्षता पॉप जॉन बेन्जिन ने की थी। इसमें अनेक राज्यों से बहुत-सारे लोग आये थे। सचिव स्वयं पं. अम्बिकादत्त व्यास थे। इस संस्था द्वारा 1940 ई. में त्रैमासिक के पत्रिका के रूप में संस्कृत सञ्जीवनम् का प्रकाशन आरम्भ किया गया था।

19वीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में बहुत सारी संस्कृत-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। चमत्कार चन्द्रिका (कोल्हापुर), विज्ञान चिन्तामणि (1888) तथा संस्कृत साहित्य परिषद पत्रिका (कोलकाता) सहृदया (श्रीरंगम), अमृतवाणी (बेंगलोर) मधुरवाणी (धरवाड़), उद्यान पत्रिका (त्रिचुर), संस्कृतकॉलेज पत्रिका (मैसूर), सूर्योदय (काशी), सुक्तिसुधा (काशी) इत्यादि।⁵

पहले कोलकाता और बाद में कोल्हापुर से प्रकाशित होने वाली चमत्कार-चन्द्रिका ने अप्पाशास्त्री राशिवडेकर के सम्पादकत्व में अपार ख्याति अर्जित की। अपने राजनीतिक लेखों के कारण अप्पाशास्त्री को कई बार जेल जाना पड़ा। संस्कृत-भाषा का पोषण और सम्वर्धन, संस्कृत-भाषाविदों में उदार दृष्टिकोण का प्रचार तथा सुषुप्त संस्कृतजों को राष्ट्र-हित के लिए जगाना आदि उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सहृदया ने राष्ट्रिय-आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।⁶

20वीं शताब्दी के आरम्भ में लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में सारे देश ने स्वदेशी आन्दोलन में भाग लिया था। संस्कृत-पत्रकारिता के लिए ये सम्वर्धन का युग था। उस अवधि में देश के विभिन्न भागों से अनेक संस्कृत-पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ, जिनमें भारतधर्म (1901 ई.), श्रीकाशीपत्रिका (1907 ई.), विद्या (1913

ई.), शारदा (1915 ई.), संस्कृत-साकेतम् (1920 ई.) वगैरह प्रमुख थीं। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के अनुसार 1918 ई. में पटना से पाक्षिक मित्रम् का प्रकाशन शुरू हुआ था। इसका प्रकाशन संस्कृत संजीवन समाज करता था। स्वतन्त्रता संग्राम के दिनों में अन्य प्रमुख संस्कृत पत्रिकाएँ थीं -आनन्दपत्रिका (1923 ई.), गीर्वाण (1924 ई.), शारदा (1924 ई.), श्री: (1931 ई.), उषा (1934 ई.), संस्कृत ग्रन्थमाला (1936 ई.), भारतश्री: (1940 ई.) आदि। 1938 ई. में कानपुर से अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मलेन का मासिक मुखपत्र संस्कृत रत्नाकर: आरम्भ हुआ। श्री केदारनाथ शर्मा इसके सारस्वत सम्पादक एवं प्रकाशक थे। 1943 ई. में राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ की त्रैमासिक पत्रिका गंगानाथ झा रिसर्च जर्नल आरम्भ की गई।⁷

संस्कृत पत्र पत्रिकाओं के समानांतर तत्कालीन संस्कृत साहित्य में भी स्वतंत्रता की लौ जलती रही। भारत में अहिंसक स्वातन्त्र्य आंदोलन का प्रमुखता से नेतृत्व महात्मा गांधी द्वारा किया गया। महात्मा गांधी को नायक के रूप में वर्णित काव्य, नाटक गद्यबद्ध जीवनचरित्र संस्कृत साहित्य में विपुलता से लिखा गया। जिसका आकलन सहज नहीं है। संस्कृत ग्रंथों में कवियित्री पंडिता क्षमाराव द्वारा 1932 इस्वी में प्रकाशित सत्याग्रहगीता उत्तरसत्याग्रहगीता एवं स्वराज्यविजयः नाम के तीन काव्य साहित्य जगत में सुविदित हैं।⁸ सत्याग्रह गीता में गांधी की लंदन यात्रा अर्थात् गोलमेज सम्मेलन का रोचक वर्णन है।

रामानंद सम्प्रदाय के महान संत वैष्णवाचार्य स्वामी भगवदाचार्य स्वतंत्रता आंदोलन में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। भगवदाचार्य स्वतंत्रता संग्राम के पूर्णतः समर्थक थे। इनके द्वारा रचित काव्यत्रय - भारतपारिजातम् पारिजातापहारम् और पारिजातसौरभम् स्वतंत्रता आन्दोलन में विशेष स्थान रखते हैं। भगवदाचार्य ने भारतपारिजातम् में महात्मा गांधी के जन्म से लेकर साबरमती आश्रम की स्थापना तक का इतिहास निबद्ध किया है।

विनायक दामोदर सावरकर ने स्वतंत्रता संग्राम को प्रेरित करने के लिए काला पानी' शीर्षक से एक उपन्यास लिखा। जिसमें इन्होंने स्वतंत्रता को एक देवी के रूप में संबोधित कर संस्कृत में लिखा है

सन्ति स्वतंत्रते भगवति ।

त्वामहं यशोयुतां वन्दे।

जयोस्तुते श्री महन्मंगले शिवास्पदे शुभदे ।⁹

अप्पा शास्त्री द्वारा पञ्जरबद्धः शुकः, शोकगीत की रचना की गई ।¹⁰ इसमें पिंजरे में बंद तोते को सम्बोधित करते हुए कवि ने परतन्त्र भारत की दीनता का मार्मिक चित्र अंकित किया है। प्रकारान्तर से यह कविता परतन्त्रता का धिक्कार और स्वाधीनता का वर्णन हैं। पिंजरा विदेशी शासन का प्रतीक है। इस कविता ने आंदोलनकारियों को प्रेरित करने का कार्य किया।

15 अगस्त 1947 को देश की स्वतंत्रता पर जो उल्लास छाया उसका विस्तार संस्कृत विद्वानों ने भरपूर मात्रा में अपनी लेखनी के द्वारा किया। संस्कृत पत्र पत्रिकाओं के विशेषांक प्रकाशित हुए। इसी संदर्भ में डॉ. वेंकट राघवन ने स्वराज्य केतुः पंडित रामकृष्ण भट्ट ने स्वातन्त्र्यज्योतिः काव्यों का प्रणयन किया। संस्कृतरत्नाकरः ¹¹पत्र के अगस्त 1947 के अंक में संपादक भट्ट मथुरा नाथ शास्त्री ने धनाक्षरी छंद में अपने उद्गार प्रकट किए।

विश्वमंडलेऽस्मिन् गुरु गौरवं भजन्ती
सेयमार्यावैजयन्ती जगन्मोलौ परितः प्रवातु ।
सर्वतोऽपि पूर्व मानवीयसभ्यताया गुरुर्देशो
दत्तसभ्यतोपदेशो मंगलं दधातु।
नूनं नीतिनैपुणेन नीचैर्नमयन्ती शठान दूरं
दमयन्ती भटान् प्रेमभरात्संपृणातु ।

पूर्वपरतंत्रतामवास्यामोघमंत्रतया सर्वतः स्वतन्त्रतया भारतविभा विभातु ॥

संस्कृतरत्नाकरः के इसी अंक में 'देवकीनंदन प्रश्नवर' द्वारा लिखित गीति अत्यंत मनोहर है। संस्कृत के जानेमाने मनीषी देवर्षि कलानाथ शास्त्री ने 15 अगस्त 1947 को शार्दूलविक्रितित छंद स्वातन्त्र्यवीरान्नुमः' कविता लिखी जो संस्कृतरत्नाकरः पत्र में छपी थी

ये कारागृहकोष्ठिकासु निगडैर्बद्धाः स्वदेशाहवे
वृन्तित्यागपरा असूनपि निजांस्त्यक्त्वाऽमरत्वं ययुः
यैवैदेशिकपारतन्त्र्यनिगडादुन्मोचिता मातृभूस्तान्
गांधिप्रमुखान् स्वराज्यतिलकान् स्वातन्त्र्यवीरान्नुमः ॥

निष्कर्षतः संस्कृत पत्रकारिता स्वतंत्रता आन्दोलन में विलुप्त नहीं रही बल्कि पत्र-पत्रिकाओं एवं साहित्य के माध्यम से भारतीय जनमानस जो परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ी थी उन्हें सदा ही प्रेरित करती रही तथा स्वतंत्रता प्राप्त होने पर उस आन्दोलन का जयघोष कर राष्ट्रिय चेतना को जीवन्त मार्ग प्रशस्त किया।

संदर्भ ग्रंथः

1. संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास, आचार्य जयशंकर त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2016; पृष्ठ 519
2. केसरी, मुख्य पृष्ठ, वर्ष 1, पुणे 4 जनवरी 1881, मंगलवार, अंक 1
3. आनन्द मठ, प्रथम खण्ड, दशम परिच्छेद, पृष्ठ 31
4. राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली, संस्कृतपत्रकारितायाः स्वरूपं महत्वं च, पृष्ठ 8
5. संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास, आचार्य जयशंकर त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2016; पृष्ठ 520
6. संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास, आचार्य जयशंकर त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2016; पृष्ठ 519
7. राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नवदेहली, संस्कृतपत्रकारितायाः स्वरूपं महत्वं च, पृष्ठ 9-10
8. संस्कृत साहित्य रचना का इतिहास, आचार्य जयशंकर त्रिपाठी, साहित्य भंडार इलाहाबाद 2016; पृष्ठ 524
9. काला पानी, विनायक दामोदर सावरकर
10. अखिल भारतीय संस्कृत साहित्य सम्मेलनस्य पत्रिका, साहित्यरत्नाकरः, अगस्त 1947